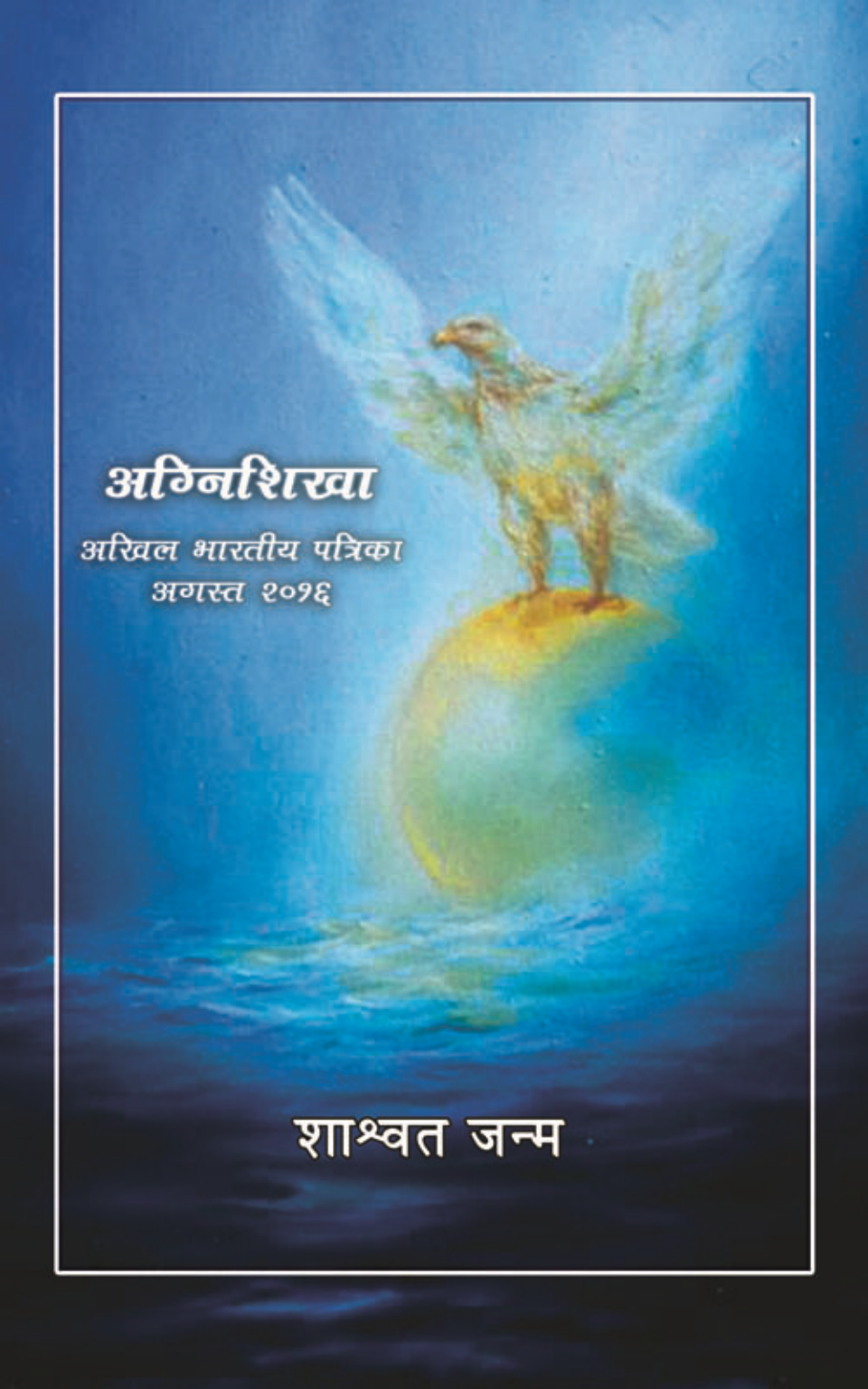
अग्निशिखा
अखिल भारतीय पत्रिका
अगस्त २०१६
शाश्वत जन्म

विषय-सूची

शाश्वत जन्म

(श्रीअरविन्द तथा श्रीमां के वचन)

कौन? (कविता)	श्रीअरविन्द	४
हमारे बीच भागवत उपस्थिति		६
१५ अगस्त का महत्त्व		७
१५ अगस्त—दर्शन-दिवस		९
वह पन्द्रह अगस्त का दिवस था	अम्बालाल पुराणी	१४
१५ अगस्त को दिये गये श्रीअरविन्द के कुछ संलाप		१७
१५ अगस्त १९४७ : भारत के लिए सन्देश		३७
कुछ संस्मरण		४३

'पुरोधा'

दैनन्दिनी		४६
'श्रीअरविन्द' के नाम के बारे में	नलिनीकान्त गुप्त	४९
कुछ मनके जिन्दगी के (भाग २)	कनिष्ठा	५०
मेरी बिटिया रानी...	वन्दना	५५
प्रतिबिम्बित रहेगा (कविता)	स्व. श्री विश्वनाथ	५८

अग्निशिखा का वार्षिक शुल्क :
एक वर्ष—१८०रु.; तीन वर्ष—५२०रु.; पांच वर्ष—८६०रु.।
पत्रिका हर महीने की ४ तारीख को प्रेषित की जाती है।

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका
Website : www.aurosociety.org

सम्पादिका : वन्दना
प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी, पॉण्डिचेरी—६०५००२
मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पॉण्डिचेरी

श्रीमां द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ

अवतार (कमल)

परम प्रभु ने पृथ्वी पर पार्थिव रूप धारण किया।

सम्पादकीय टिप्पणी :

श्रीअरविन्द के जन्म के कारण १५ अगस्त ने एक दिव्य अर्थ अपना लिया है। इसमें आश्चर्य नहीं कि भारत—योग की धरती—श्रीअरविन्द के द्वारा उनकी तपस्या के लिए चुना हुआ गृह, और उसे दी हुई उनकी पूर्णयोग की देन; वह राष्ट्र जिसे श्रीमां ने अपनी 'कृपा' को उंडेलने के लिए चुना —उसी राष्ट्र को उसी दिन, १५ अगस्त १९४७ को स्वतन्त्रता की भेंट प्राप्त हुई। और साथ ही, श्रीअरविन्द के जन्म की महानता को सिद्ध करना तो अभी दूर की बात है, इसे समझने के लिए भी भारत और मानवजाति को अभी लम्बा रास्ता तय करना है।

इस अंक में हम श्रीअरविन्द के जन्मदिवस के कुछ महत्त्वपूर्ण तथा रुचिकर पहलुओं पर चञ्चुपात करने का प्रयास कर रहे हैं। उनका जन्मदिवस, संसार-भर में उनके शिष्यों तथा भक्तों द्वारा 'दर्शन-दिवस' के रूप में मनाया जाता है।

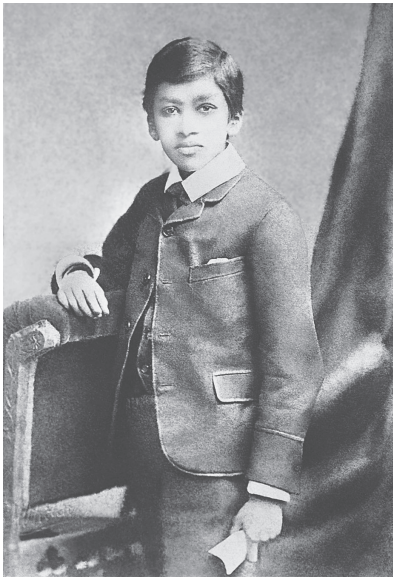

कौन?

(श्रीअरविन्द की कविता Who का भावानुवाद)

वन-उपवन की हरियाली में और गगन के नीलेपन में,
किसने अपनी कला दिखायी दिव्य-छटामय कर चित्रण?
गगन-गर्भ में पड़े पवन जो निद्रा से होकर अभिभूत,
किसने उन्हें जगाया, बोलो, और पठाया कर निज दूत?
खोया हुआ वह हृदय-कुञ्ज में, प्रकृति-गुहा में अन्तर्धान,
पाया जाता पुनि मस्तक में रचते हुए विचार-वितान।
रूप-रंग में फूलों के वह ताना-बाना बना हुआ,
तारावलि के जगमग-जगमग किरण-जाल में फंसा हुआ।
वही पुरुष की बलवत्ता, अरु नारी की सुन्दरता में,
वही बाल की हंसी-खुशी अरु बाला लज्जारुणता में।
वही हाथ जिसने गुरु फेंका लट्टू-सम नभ-प्रांगण में,
वही व्यक्त सब कौशल करता कुञ्चित लटके सिरजन में।
ये तो उसके छद्मवेश, उसकी छायाएं, उसके काम;
स्वयं कहां वह छिपा हुआ है, पाया है उसने क्या नाम?

क्या वह ब्रह्मा, विष्णु, वही है? क्या वह नर अथवा नारी?
एक अकेला, यमज बना वह, तन-विरहित या तनधारी?
हृदय हमारे वास करे है श्याम-सलोना बालक एक,
शीर्ष हमारे राज करे है नग्न-भयंकर नारी एक।
गिरियों के हिम पर देखा है उसको ध्यान-मग्न आसीन,
लोकों के हिय में पाया है उसको सतत कर्म में लीन।
जग-जाहिर कर डालेंगे हम उसकी चालाकी, करतूत,
आनन्द छकता घोर यन्त्रणा, राग-द्वेष, पीड़ा-सम्भूत।
शोक हमारा अति प्रिय उसको, हमें रुलाना उसका काम,
पीछे से फिर फुसला लेना दिखा रूप सुन्दर, सुखधाम।
संगीत-सकल को तू केवल उसके हंसने की ध्वनि जान,
सौन्दर्य समस्त उसी के आनन्द की मादक मुस्कान;
जीवन उसके हिय का स्पन्दन, पुलक हमारा मधुर-मिलन
श्रीराधा अरु कृष्ण-कान्हा का, प्रेम यहां उनका चुम्बन।
भेरीगण के तुमुल नाद में शक्ति रूप से वही प्रकट,
रथारूढ़ हो युद्ध करे अरु भालों की बौछार विकट;
हनन करे जी खोल खटाखट, करुणा में वह सिन्धु समान;
जूझे है वह लोक-पक्ष में, अरु जग के अन्तिम कल्याण।
लोक-सकल के द्रुत धावन में, युग-युग की लहरों में घोर,
अकथनीय, वह, सर्वशक्तिमय, भव्य-विराट् और निर्दोष;
मनीषियों की अन्तिम चोटी, उससे भी वह ऊर्ध्व अतीत,
राजमान वह उन धामों में जो शाश्वत अरु कालातीत।
मानव का है वह तो स्वामी अरु अनन्त प्रेमी उसका,
हृदय हमारे के समीप अति, पर दर्शन दुर्लभ उसका;
क्योंकि अन्ध हम निज घमण्ड से, राग-छटाओं से मतिमन्द,
जकड़े हैं हम निज विचार में, समझ रहे खुद को स्वच्छन्द
सूरज में बस अजर-अमर जो वह तो है उसकी काया,
अर्द्ध-रात्रि में अंधियारा जो वह जानो उसकी छाया;
अन्धकार जब अन्धा था अरु अन्धकार से आच्छादित,
बैठा था वह बीच उसी के एकाकी अरु बृहत्-अमित।

—अनु. स्व. रामकृष्ण

हमारे बीच भागवत उपस्थिति

भगवान् को अभिव्यक्त करने वाली किसी भी चीज को मान्यता देने में लोग इतने अनिच्छुक होते हैं कि वे हमेशा दोष निकालने के लिए, ऊपर से दीखने वाली भूलों को खोजने के लिए और जो ऊंची चीज है उसे भी अपने स्तर तक उतार लाने के लिए बड़े सतर्क रहते हैं। कोई उनसे आगे बढ़ जाये तो बहुत क्रुद्ध हो उठते हैं और जब वे ऊपरी त्रुटियां पा लेते हैं तो बहुत खुश होते हैं। लेकिन वे यह भूल जाते हैं कि अगर वे अपने असंस्कृत भौतिक मन के साथ धरती पर उपस्थित भगवान् के सामने भी आ जायें तो वे उन्हें भी असंस्कृत ही देखेंगे। वे ऐसी चीज देखने की आशा नहीं कर सकते जिसे देखने में वे स्वयं असमर्थ हैं या जिसे देखने के लिए वे अनिच्छुक हैं। अगर वे भगवान् के कामों की ऊपरी सतह को ही देखें तो निश्चय ही गलत राय बना बैठेंगे, क्योंकि वे यह बात कभी न समझ पायेंगे कि जो एकदम से मानव क्रिया-कलाप मालूम होता है वह सचमुच उससे बहुत भिन्न है और एक अ-मानव स्रोत से आता है।

भगवान् जब धरती पर कार्य के लिए प्रकट होते हैं तो ऐसा लगता है कि वे पूरी तरह मानव रीति से काम कर रहे हैं, लेकिन सचमुच ऐसा नहीं होता। प्रत्यक्ष तथा प्रतीत होने वाले मानकों से उनका मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। परन्तु मनुष्य अपनी हीनता पर पूरी तरह से मुग्ध होते हैं और किसी उच्चतर सत्य के आगे झुकने या उसे स्वीकार करने के लिए बिलकुल तैयार नहीं होते। अपने अन्दर से जिसे कोई चीज उच्चतर सत्य मानती है उसमें दोष ढूंढ़ने की यह इच्छा, उसकी आलोचना करने और उस पर संदेह करने का दुर्भावनापूर्ण आवेग मानवता की मुहर है—यह क्षुद्र मानव का चिह्न है। जब कि दूसरी ओर, जहां भी सत्य, सुन्दर, उदात्त के लिए सहज प्रशंसा निकलती है तो यह एक तरह की भागवत अभिव्यक्ति है। तुम निश्चित रूप से जान लो कि जब तुम किसी चीज को दिव्य स्रोत से आया हुआ अनुभव करते हो और तुम्हारा हृदय उसकी प्रशंसा और आराधना करने के लिए उछल पड़ता है तो तुम्हारी भौतिक चेतना चैत्य पुरुष के, तुम्हारी अन्तरात्मा के सम्पर्क में आयी है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. १७०

१५ अगस्त का महत्त्व

श्रीअरविन्द के जन्म का महत्त्व

यह प्रश्न उन शब्दों से सम्बन्धित है जो मैंने श्रीअरविन्द के जन्म के बारे में कहे थे—ये उनके जन्मदिन की पूर्व-सन्ध्या को कहे गये थे—मैंने उसका एक "सनातन जन्म" के रूप में वर्णन किया था। मुझसे पूछा गया है कि "सनातन" से मेरा क्या अभिप्राय है...।

... मैं तुम्हें समझाऊंगी कि कैसे इसकी एक भौतिक व्याख्या या अर्थ, एक मानसिक अर्थ, एक चैत्य अर्थ और एक आध्यात्मिक अर्थ हो सकता है—और वास्तव में है भी।

भौतिक रूप में, इसका अर्थ यह है कि इस जन्म के परिणाम तब तक रहेंगे जब तक स्वयं पृथ्वी रहेगी। श्रीअरविन्द के जन्म के परिणाम पृथ्वी के सम्पूर्ण अस्तित्व-काल में अनुभव होते रहेंगे। अतः मैंने इसे कुछ कवित्वपूर्ण तरीके से "सनातन" कहा है।

मानसिक रूप में, यह एक ऐसा जन्म है जिसकी स्मृति सनातन काल तक बनी रहेगी। आगे, युगों तक श्रीअरविन्द का जन्म और उसके प्रभाव स्मरण किये जायेंगे।

चैत्य रूप में, यह एक ऐसा जन्म है जिसकी पुनरावृत्ति विश्व के इतिहास में शाश्वत रूप से युग-युग तक होती रहेगी। यह एक ऐसा प्रादुर्भाव है जो पृथ्वी के इतिहास में, युग-युग में, समय-समय पर होता है, अर्थात् यह जन्म स्वयं अपने-आपको नये-नये रूपों में बार-बार दोहराता है और शायद प्रत्येक बार कुछ अधिक बड़ी चीज—अधिक सिद्ध और अधिक पूर्ण चीज—अपने साथ लाता है, परन्तु यह पार्थिव शरीर में अवतरित होने, अभिव्यक्त होने, जन्म लेने की वही क्रिया होती है।

और अन्त में, विशुद्ध आध्यात्मिक दृष्टि से, यह कहा जा सकता है कि यह जन्म पृथ्वी पर "सनातन" का जन्म है। क्योंकि प्रत्येक बार जब अवतार शरीर धारण करते हैं तो यह पृथ्वी पर स्वयं "सनातन" का जन्म होता है।

यह पूरी बात, दो शब्दों में आ गयी है : "सनातन जन्म"।...

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ९, पृ. १९९-२००

तुम श्रीअरविन्द के अन्दर
जिनकी आराधना करते हो वे ही भगवान् हैं।

—श्रीमां

१५ अगस्त—दर्शन-दिवस

महान् अवतरणों के साथ-साथ महान् प्रतिरोधों का भी काल

प्रश्न : इस दर्शन पर, 'आनन्द', 'शक्ति' या 'प्रकाश' के स्थान पर मैंने बहुत ही शुष्कता का अनुभव किया।

यह तुम्हारी अवस्था पर निर्भर करता है कि 'आनन्द', 'शक्ति' या 'प्रकाश' का अवतरण हो या फिर विरोध अपना सिर उठाये। यह तुम्हारी अज्ञानी और अन्धकारमयी सामान्य भौतिक चेतना का अज्ञान है जो लगता है कि तुम्हारे अन्दर उठ रहा था। १५ अगस्त का समय महान् अवतरणों के साथ ही साथ महान् प्रतिरोधों का काल भी होता है। यह १५ अगस्त भी अपवाद नहीं था।

—नीरदवरण के साथ बातचीत से

यह बहुधा घटित होता है कि दर्शन-दिवस के समीप आते ही विरोधी शक्तियां एकजुट हो जाती हैं और व्यक्तिगत रूप में या व्यापक तौर पर आक्रमण करती हैं ताकि व्यक्ति वैयक्तिक रूप में जो ग्रहण कर सकता है उसमें, और व्यापक रूप से जो उतारा जा रहा है उसमें भी रोड़े अटका कर अवतरण में बाधक बन जायें। साथ ही, बहुधा, दर्शन-दिवस के बाद भी जोरदार प्रहार होता है, क्योंकि जो सम्पन्न हो चुका है उसे वे बिगाड़ना चाहती या उसे और आगे बढ़ने से रोकना चाहती हैं। लेकिन जहां तक व्यक्ति का सवाल है, इस प्रहार से गुजरने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि अगर व्यक्ति अपनी प्रकृति में सचेतन हो तो वह प्रतिक्रिया करके उसे दूर फेंक सकता है। या अगर वह विरोधी-शक्ति तब भी अपना जोर लगाये तो व्यक्ति अपनी इच्छा-शक्ति और श्रद्धा के बल-बूते पर उस अस्थायी बाधा से निकल कर अधिक महान् उद्घाटन और नयी प्रगति के प्रति खुल सकता है।

CWSA खण्ड ३५, पृ. ५२४-२५ —श्रीअरविन्द

अगस्त दर्शन के प्रति उचित मनोभाव

प्रश्न : किसी ने मुझसे कहा कि १५ अगस्त के दर्शन में सिर्फ दस दिन रह गये हैं। मैंने उत्तर में कहा कि प्रत्येक दिन हमें १५ अगस्त के दिवस के रूप में ही मनाना चाहिये।

यह सही मनोभाव है। प्रत्येक दिवस को इस रूप में लेना चाहिये कि हो सकता है आज ही अवतरण हो जाये या उच्चतर चेतना के साथ सम्पर्क स्थापित हो जाये। तब स्वयं १५ अगस्त अधिक सफल और सम्पन्न हो जायेगा।

*

रही बात १५ अगस्त की, हां, इस पर बहुत जोर मत दो, आखिरकार, यह व्यक्तिगत की अपेक्षा अधिक व्यापक पर्व है—किसी व्यक्ति के लिए साल का कोई भी दिन १५ अगस्त हो सकता है—यानी अपनी आन्तरिक सत्ता की किसी भी वस्तु का जन्मदिवस हो सकता है। सचमुच इसी मनोभाव के साथ व्यक्ति को साधना करनी चाहिये।

CWSA खण्ड ३५, पृ. ५२३ —श्रीअरविन्द

जो लोग श्रीअरविन्द की शताब्दी मना रहे हैं उनका आह्वान उनकी उपस्थिति को अधिक सक्रिय और प्रभावकारी बनाता है। लेकिन जो हमेशा उनके साथ रहते हैं उन्हें इससे कोई विशेष फर्क नहीं पड़ता।

जब लोग समाधि के पास उन पर एकाग्र होते हैं तब भी यही होता है; वे हमेशा वहां रहते हैं, परन्तु उनकी पुकार के उत्तर में उनकी उपस्थिति अधिक सक्रिय हो जाती है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १७, पृ. ४८३

... श्रीअरविन्द के आशीर्वाद का आनन्द पाने के बाद, ज्यादा अच्छा यह है कि एकाग्र रहा जाये और औरों के साथ घुल-मिल कर बातें करते हुए अपना हर्ष फेंक देने की जगह उसे अपने अन्दर ताले-चाबी में बन्द करके रखा जाये।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १६, पृ. ९८

संसार अभी तक तैयार नहीं है

... देखो वत्स, ऐसा नहीं है कि 'सत्य' के इस संसार का सृजन 'कुछ नहीं' से करना है। वह संसार यहां उपस्थित है, हमारे इस वर्तमान जगत् के पीछे एक अस्तर की तरह लगा हुआ है। सब कुछ यहां उपस्थित है, यहां मौजूद है। मैं इस अवस्था में पूरे दो दिन रही, दो दिन रही इस परमानन्दमयी अवस्था में। और मेरे साथ सारे समय श्रीअरविन्द थे, सारे समय—जब मैं चली, वे मेरे साथ-साथ चले, जब मैं बैठी, वे मेरे बगल में ही बैठे। १५ अगस्त के दिन भी, दर्शन के समय वे निरन्तर मेरे साथ ही बने रहे। लेकिन किसे इस बात का भान हुआ? बहुत ही कम को, एक या दो को इसका आभास हुआ। लेकिन इसे देखा किसने? किसी ने नहीं। और मैंने इन सभी लोगों को श्रीअरविन्द को दिखलाया, इस सारे कार्यक्षेत्र को दिखलाया, और उनसे पूछा कि वह दूसरा जगत्, सच्चा जगत्, जो यहां सचमुच उपस्थित है, हमारे इतनी पास है, वह हमारे इस मिथ्यात्व के जगत् के स्थान पर कब आयेगा? उनका उत्तर था, 'तैयार नहीं है। यह जगत् अभी तक *तैयार नहीं है।...*'

हां, यह चीज समय लेगी, इस जगत् से उस सच्चे जगत् में जाने में थोड़ा-सा समय लगेगा। वैसे चुटकी बजाते ही यह हो जायेगा, लेकिन कुछ समय बाद, हमारी आन्तरिक मनोवृत्ति में जरा से उलटाव की आवश्यकता है। तुम्हें कैसे समझाऊं?... सामान्य चेतना इसे देख भी न पायेगी; बस जरा-सा आन्तरिक खिसकाव होगा, वही पर्याप्त होगा, और सारी चीज बदल जायेगी।

श्रीमां के साथ एक शिष्य के वार्तालाप से ६ अक्तूबर १९५९

नित्य परिवर्तनशील शरीर का जन्मोत्सव मनाना हृदय की कुछ श्रद्धापूर्ण भावनाओं को सन्तुष्ट कर सकता है।

शाश्वत चेतना की अभिव्यक्ति का उत्सव विश्व इतिहास के प्रत्येक मुहूर्त में मनाया जा सकता है।

परन्तु एक नवीन जगत् के, अतिमानसिक जगत् के आविर्भाव का उत्सव मनाना एक असाधारण और अद्‌भुत सौभाग्य की बात है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १५, पृ. २०४

स्वर्णिम शान्ति

मैं अपने आसन पर बैठ गयी, समय प्रायः हो गया था, शायद आधा मिनट हो, और अचानक, बिना किसी तैयारी के, यूं ही, हथौड़े की चोट के समान : ऐसा प्रभावकारी अवतरण हुआ—पूरी तरह से स्थिर—किसी ऐसी वस्तु का... मानों उसी समय श्रीअरविन्द ने मुझसे कहा (क्योंकि व्याख्या अनुभूति के साथ-साथ आयी : यह एक अन्तर्दर्शन था जो अन्तर्दर्शन न था, वह इतने समग्र रूप में ठोस था) और शब्द थे : **"स्वर्णिम शान्ति"**। कितनी जोरदार! और फिर वह अनुभूति हटी नहीं। पूरे आधे घण्टे तक नहीं हटी। यह नयी चीज है जिसे मैंने पहले कभी अनुभव नहीं किया था। मैं यह नहीं कह सकती... वह देखी गयी, लेकिन वह वस्तुपरक अन्तर्दर्शन की तरह नहीं थी। और सहज रूप से दूसरों ने मुझसे कहा कि जिस क्षण वे ध्यान के लिए बैठे *(राशिभूत अवतरण का संकेत)* कोई चीज महान् शक्ति के साथ नीचे उतरी जो पूरी तरह से स्थिर थी, और ऐसी शान्ति का अनुभव हुआ जिसका उन्होंने अपने जीवन में कभी अनुभव नहीं किया था।

स्वर्णिम शान्ति। और यह सच है, उसने स्वर्णिम अतिमानसिक प्रकाश का भाव जगाया। लेकिन वह... एक शान्ति थी! पता है, वह ठोस थी, अव्यवस्था और क्रिया-कलाप का निषेध नहीं, नहीं : ठोस, ठोस शान्ति थी। मैं रुकना नहीं चाहती थी। समय हो चुका था, फिर भी मैं दो-तीन मिनट रही। जब मैं रुकी तो यह अनुभूति जा चुकी थी। और इसने मेरे शरीर में बहुत बड़ा बदलाव कर दिया—स्वयं शरीर में इतना बड़ा अन्तर आ गया कि जब वह चली गयी तो मैंने बहुत बेचैनी का अनुभव किया। मुझे अपना सन्तुलन वापस लाने में आधा मिनट लगा।

वह आयी और चली गयी। वह ध्यान के लिए आयी और फिर वह चली गयी। आधे घण्टे से ज्यादा, पैंतीस मिनट तक रही।

शाम को, बालकनी[१] में, भीड़ थी। मेरे ख्याल से यह हमारे यहां की सबसे बड़ी भीड़ थी : सभी सड़कों पर भीड़ फैली थी, मैं जहां तक देख सकती थी, सड़कें लोगों से खचाखच भरी थीं। तब मैं बाहर आयी और

[१] १५ अगस्त, श्रीअरविन्द के जन्मदिन पर, माताजी अपने ऊपर के कमरे की बालकनी पर कुछ मिनट खड़ी होकर नीचे सड़क पर खड़े लोगों को दर्शन दिया करती थीं।

जैसे ही मैं बाहर निकली तो इस भीड़ से ऐसी चीज उठी जो एक अभ्यर्थना, एक प्रार्थना, एक प्रतिवाद जैसा था जो इस जगत्, विशेषकर इस देश की अवस्था के बारे में था। यह चीज लहरों में उठी। मैंने उसकी ओर देखा (वह बहुत ही अनुरोधपूर्ण थी) और फिर मैंने अपने आपसे कहा : "यह मेरा दिन नहीं है, यह तो श्रीअरविन्द का दिन है।" और मैं यूं चली गयी *(हटने का संकेत)* और मैंने श्रीअरविन्द को आगे कर दिया। और जब वे आगे आये तो सामने खड़े होकर उन्होंने बस इतना ही कहा, बस यही : "परम प्रभु सबसे अच्छी तरह जानते हैं कि वे क्या कर रहे हैं।" *(माताजी हंसती हैं)* तुरन्त, मैं मुस्कुराने लगी (मैं हंसी नहीं, बल्कि मुस्कुराने लगी) और वही सुबह वाली शान्ति उतर आयी।

तो ऐसा हुआ।

"परम प्रभु सबसे अच्छी तरह जानते हैं कि वे क्या कर रहे हैं", अपने पूर्ण विनोद भाव के साथ और तुरन्त सब कुछ शान्त हो गया।

१५ अगस्त १९६७ —'श्रीमातृवाणी', खण्ड १५, पृ. ४४६-४७

हमारी मानव चेतना में ऐसी खिड़कियां हैं जो शाश्वत में खुलती हैं। लेकिन मनुष्य साधारणतः इन खिड़कियों को सावधानी से बन्द रखते हैं। हमें उन्हें पूरी तरह खोल देना और शाश्वत को बेरोक-टोक अपने अन्दर आने देना चाहिये ताकि वह हमें रूपान्तरित कर सके।

खिड़कियां खोलने के लिए दो शर्तें जरूरी हैं :

१. तीव्र अभीप्सा।

२. अहंकार का उत्तरोत्तर विलय।

जो सच्चाई के साथ काम में लगते हैं उनके लिए भागवत सहायता निश्चित है।

८ दिसम्बर १९७१ —'श्रीमातृवाणी', खण्ड १६, पृ. ४७५

वह पन्द्रह अगस्त का दिवस था

(एक संस्मरण)

कौन है जो इस दिवस का वर्णन कर सकता है, कल्पना के रंग, काव्यमयी उपमाओं और बहुसंख्यक विशेषणों से कोई लाभ न होगा। बस इतना कहना पर्याप्त है, "वह पन्द्रह अगस्त का दिवस था।" और कोई दूसरा दिन आध्यात्मिक क्रिया के गाम्भीर्य और तीव्रता में इस दिवस के साथ होड़ नहीं लगा सकता और न ही संवेदनों की बाढ़ और उस वातावरण के सामने कोई दिन टिक सकता है जिसमें यहां का प्रत्येक व्यक्ति नहा रहा था।

प्रभु का अपने शिष्यों के साथ सभी सम्भव सम्बन्धों को ग्रहण करने, उन्हें प्रत्यक्ष और जीवन्त बनाने के लिए यह दिवस परम चिह्न है। प्रत्येक शिष्य उन्हें अपना मानता है और प्रभु हर एक को अपना मानते हैं। हर एक यह मानता है कि प्रभु उसके साथ सबसे अधिक प्रेम करते हैं और यह सच है कि वे हर एक से सबसे अधिक प्यार करते हैं। यह अनुभूति कोई भ्रान्ति या कोई प्रवञ्चनकारी आत्म-सम्मोहन नहीं, एकदम से वास्तविक है। व्यक्ति परम सत्य के जिस सहज, गतिशील विधान का अंग बन जाता है वह है प्रेम—भागवत प्रेम।

सभी आश्रमवासियों में समर्पण के आनन्द का उफान उठ रहा है —समर्पण के परमानन्द की चिनगारी सबको अभिभूत कर रही है। सब कुछ त्याग दिया, प्रत्येक वस्तु समर्पित कर दी, इस तरह आदमी कितना मुक्त अनुभव करता है। कोई है जिसने तुम्हारे समस्त भार को ले लिया है, वह परम प्रभु की एक शक्ति है। तुम उस पर निश्चित रूप से भरोसा रख सकते हो। तुम्हें केवल अपने तुच्छ स्व को त्यागना है, बाकी उनका कार्य है, इसके बाद तुम्हें कोई चिन्ता, कोई व्यग्रता नहीं होती! कोई प्रयास नहीं—केवल स्नेहभरा समर्पण! कितना आसान।

प्रत्येक चेहरा समर्पण के आनन्द से दमक रहा है। हर एक प्रसन्न है और वे साधारणतः ज्ञान के अवतार दीखते हैं लेकिन आज वे भिन्न हैं। आज वे मूर्तिमान प्रेम हैं। यह रहे महान् कवि और परम प्रेम के अवतार!

प्रश्न है, क्या मांगा जाये? प्रेम या आशीर्वाद। या फिर हमें प्रेम और आशीर्वाद दोनों के लिए प्रार्थना करनी चाहिये और अपने जैसे अयोग्य

व्यक्तियों को स्वीकारने के लिए कृतकृत्य होना चाहिये? शाश्वत की देहली पर खड़ी अन्तरात्मा ने जब उनकी स्वप्निल और प्रेममयी आंखें देखीं तो क्या वह हमेशा के लिए सम्मोहित न हो गयी! भागवत प्रेम का अवर्णनीय रहस्य यहां प्रत्यक्ष अनुभूति बन गया था। भला कौन इस तथ्य की व्याख्या कर सकता है? तथ्य है तथ्य और अनुभव अनुभव, उसकी कोई व्याख्या सम्भव नहीं।

"मुझे उन्हें क्या देना चाहिये?" यह मन का प्रश्न है। "मुझे क्या मांगना चाहिये?" यह हृदय का प्रश्न है। दोनों ही उत्तर देना अस्वीकार करते हैं और दोनों ही प्रश्न अनुत्तरित रह जाते हैं। मन अपने अर्पण की तुच्छता का अनुभव करता है और मौन है। हृदय अपनी भिक्षा-वृत्ति के कारण लज्जा का अनुभव करता है और यह भी अनुभव करता है कि उसके अहं को चोट लगी है। इस सुखद उलझन को भला कौन सुलझा सकता है?

लेकिन यह सब दर्शन के पहले था। जब व्यक्ति सचमुच उनके सम्मुख खड़ा होता है, समस्त उत्सुकता, समस्त अहंकार, सभी विचार, सभी प्रश्न, सभी दृढ़-निश्चय भागवत की तीव्रता में बह जाते हैं।

वे परम प्रेम के सशरीर अवतार! कितनी पारदर्शकता! परम प्रभु के हृदय में भी संवेगों का समुद्र ठाठें मार रहा है। हमारा हृदय पिघल कर उनके चरणों पर जा गिरा है, अनजाने उसने स्वयं को समर्पित कर दिया है, यहां किस भाषा की आवश्यकता है। केवल एक ही भाषा का यहां स्थान है—शरीर और उसके अर्पण की भाषा, समर्पण की क्रिया में शरीर के साष्टांग प्रणाम की भाषा, हृदय के स्पन्दन और नेत्रों के अश्रु-प्रवाह की भाषा। देवत्वगर्भित कितनी शान्ति विराजमान है! इस अनुभूति का कितना सौन्दर्य है!

हर एक समता रखने की कोशिश कर रहा है। हर एक अचञ्चल है और शान्त रहने का भरसक प्रयत्न कर रहा है। लेकिन आज मनुष्यजाति की सारी सीमाएं भागवत प्रेम की बाढ़ में बह गयी हैं। अन्तरात्मा की अपनी समता बनी है, लेकिन समस्त सत्ता में हलचल मची है क्योंकि अज्ञात जलधाराएं उसमें हिलोरें ले रही हैं। ज्ञान ताक पर रख दिया गया है और हर जगह प्रेम की बाढ़ आ गयी है। आज अन्तरात्मा को भागवत विजय की वह सुनिश्चिति प्राप्त हुई है जो आज तक कभी न मिली थी।

सभी भोजनालय में एकत्र हैं और आनन्द में सराबोर, आनन्द में नहा रहे हैं। हर एक प्रसन्न है—परम प्रसन्न—पूर्ण आनन्द में है। आज परमानन्द का साम्राज्य उतरा है। हे शिल्पी! कितना भव्य शिल्प है। प्रत्येक के लिए ऐसे आनन्द का पारावार! जो हर एक में भर कर उफन पड़ता है।

चार बजे, सभी रोज के स्थान—बरामदे में बैठे हैं। आशा से भरपूर, सभी शान्त हैं; बस इधर-उधर, कुछ फुसफुसाहट। मन नीरवता के साथ यही दोहरा रहा है, "वे कब आयेंगे? वे आ जायें।" लो, सवा चार बज गये—दरवाजे के पीछे वही पुरानी परिचित लेकिन फिर भी नयी खट् की आवाज। धीरे-धीरे दरवाजा खुलता है: गुरु बाहर चरण धरते हैं, उनके पीछे-पीछे श्रीमां लाल पाड़ की सफेद, मोतिया जैसे रंग की साड़ी में सुशोभित दीख रही हैं। वे अपनी उसी बड़ी जापानी कुर्सी पर विराजमान हो गये। माताजी उनकी दाहिनी ओर छोटे-से स्टूल पर बैठ गयीं। कुछ देर के लिए—करीब पांच मिनट के लिए पूर्ण निश्चल-नीरवता छायी रही।

उसके बाद उन्होंने हर एक पर पृथक् नजर डाली। क्षण निश्चल-नीरवता में घुल रहे थे। एक बार फिर सबके अन्दर संवेग की लहर दौड़ गयी और सभी फिर से भागवत संवेग के समुद्र में उतर गये। ओह, कितना अद्भुत हो अगर सम्पूर्ण शाश्वतता इसी अनुभूति में बहती चले। काल, बिचारा काल, मनुष्य उसके प्रवाह को दोषी ठहराते हैं। लेकिन समय के प्रवाह में क्या दोष है भला? अगर इतने प्रेम और इतने भागवत आनन्द की क्रीड़ा हो सकती है तो बिचारे काल को भी बह लेने दो और अपनी शाश्वतता पा लेने दो। संसार को भागवत बनने दो। इसके साथ-साथ एक दूसरी शक्तिशाली अभीप्सा जो ऊपर उठी वह यह थी: प्रकट करने की आश्यकता नहीं;—सम्पूर्ण शाश्वतता को इस नीरव-निश्चलता में बह जाने दो।

१५.८.१९२४ —अम्बालाल पुराणी

प्र. वर दे कि परम प्रभु—श्रीअरविन्द—का जन्मदिन मेरे लिए...

श्रीमां : पूर्ण आत्मोत्सर्ग का दिवस हो।

१३ अगस्त १९३४

१५ अगस्त को दिये गये श्रीअरविन्द के कुछ संलाप

धीरज धरो, न निराश होओ, न श्रद्धा खोओ

अपने बचपन में, जब मेरी क्षमताओं का पूर्ण विकास नहीं हुआ था, मैं अपने अन्दर की एक प्रबल प्रेरणा के बारे में सचेतन हो गया था। तब मुझे पता नहीं चला कि वह क्या चीज थी, लेकिन जैसे-जैसे मैं बढ़ता गया, जब तक कि मेरे बचपन की सभी कमजोरियां—भय, स्वार्थ, इत्यादि मेरे मन से एकदम अदृश्य न हो गये, यह भाव प्रबल से प्रबलतर होता गया। जिस दिन मैं भारत लौटा, अपनी जननी-जन्मभूमि पर मैंने पदार्पण किया, यह आवेग बड़ी शक्ति के साथ ऊपर उठता गया और अब मेरा निर्दिष्ट लक्ष्य तथा मेरी भक्ति अधिकाधिक प्रतिष्ठित होते जा रहे हैं, यद्यपि यहां तक पहुंचने के लिए मुझे अनेकानेक कसौटियों तथा अग्नि-परीक्षाओं में से गुजरना पड़ा। प्रभु की कृपा से जब कभी कोई भागवत शक्ति स्वयं को किसी मानव सत्ता में प्रकट करती है तो उस सत्ता के विकास के साथ-साथ सम्पूर्ण राष्ट्रीय जीवन भी एक नयी शक्ति से सञ्चारित हो उठता है। तब तुम्हें स्वयं को मां के चरणों में न्योछावर कर देना होता है। अतः, तुम्हें पूरी श्रद्धा के साथ, अपने पूरे तन-मन से स्वयं को जन्मभूमि की सेवा में लगा देना चाहिये। इस क्षण अपनी जननी-जन्मभूमि की सेवा ही हमारा परम धर्म है। इस लौह युग में यही हमारा कर्तव्य-कर्म होना चाहिये। यही वह समय है कि हमें अपनी ऊर्जा को बचा कर रखना चाहिये। अधीर मत होओ, निराश मत होओ, श्रद्धा मत खोओ। वर्तमान थकान और निष्क्रियता स्वाभाविक हैं; इस तरह के उदाहरण तुम्हें प्रत्येक राष्ट्र के इतिहास में मिलेंगे। प्रत्येक को अपनी ऊर्जा बचा कर रखनी चाहिये। मां की पूजा-अर्चना के लिए नूतन आशा और ओज के साथ आगे बढ़ो। इस देश में 'भागवत शक्ति' ने एक नयी शक्ति फूंक दी है।

एक दिन यह शक्ति राष्ट्र को उन्नति के शिखर पर ले जायेगी।

(१५ अगस्त १९०९ को अपने ३७ वें जन्मदिन पर श्रीअरविन्द ने कलकत्ते के अपने घर में कुछ लोगों को सम्बोधित किया था।)

CWSA खण्ड ८, पृ. १७९ —श्रीअरविन्द

अतिमानसिक सत्य के अवतरण का प्रतीक

पहले हम इस दिन को, मेरे भौतिक जन्मदिन को "प्राणिक" ढंग से मनाया करते थे। उसमें आन्तरिक सत्य का बीज तो होता था, किन्तु अभिव्यक्ति प्राणिक ही हुआ करती थी। अब मैं चाहता हूं कि अगर यह दिन मनाया जाये तो वह उस 'सत्य' के साथ मेल खाता हुआ हो जिसका यह प्रतीक है।

तुम सब उस अतिमानसिक सत्य के बारे में जानते हो जिसे हमारे जीवन में उतरना है। आज के दिन वह सत्य प्रतीक-रूप लेता है लेकिन उसके नीचे आने में बहुत-सी बाधाएं हैं। पहले हैं मन और मानसिक भाव जो ऊपर से आते हुए सत्य को पकड़ कर अपने ही उद्देश्य के लिए उसका उपयोग करना चाहते हैं। उदाहरण के लिए, प्राण या जीवनी-शक्ति को लो, जो इस उच्चतर शक्ति को पकड़ कर उसे अशुद्ध क्रियाओं में उंडेलना चाहते हैं। जो सत्य उतर रहा है वह मानसिक नहीं, अतिमानसिक है। उसके भली-भांति काम कर सकने के लिए जरूरी है कि सभी निचली शक्तियां अतिमानसभावापन्न हो जायें। निचली शक्तियां इस उच्चतर सत्य का उपयोग अपनी सामान्य निम्नतर गतिविधियों की तुष्टि के लिए करना चाहती हैं। जब मनुष्य जीवन के सुखों में लगा होता है या अपना जीवन अपने स्वार्थों को पूरा करने की तलाश में लगाये रहता है तो सचमुच उसमें और उसके द्वारा निम्नतर वैश्व शक्तियां ही सुख भोगती हैं।

यह उच्चतर शक्ति अपनी पूरी शुद्धि में काम कर सके इसके लिए जरूरी है कि व्यक्ति ऊपर की महान् शक्ति की ओर खुल सके, अपने-आपको उसे सौंप सके और जो कुछ उच्चतर सत्य के रास्ते में आड़े आता है उसे हटा सके। समर्पण की क्षमता इन्हीं तीन चीजों पर निर्भर करती है।

मैं पिछले कई वर्षों से इसी काम में लगा हूं कि इन अड़चनों का सामना करके इन्हें हटाया जाये, रास्ता साफ और तैयार किया जाये ताकि काम तुम्हारे लिए बहुत ज्यादा कठिन न रहे। जहां तक मेरी मदद का सवाल है, यह पूरी तरह निर्भर करता है तुम्हारी क्षमता पर। वास्तविक आध्यात्मिक समर्पण कोई और ही चीज है, लेकिन अगर तुममें से किसी ने जरा-सी मात्रा में उसकी हलकी-सी छाया भी पा ली तो १५ अगस्त का उद्देश्य पूरा हो गया।

१५ अगस्त १९२३

—श्रीअरविन्द के साथ 'सान्ध्य-वार्ताएं'
पुराणी द्वारा अभिलिखित

जमीन की "खुदाई"

मैं इस समय अतिमानस को भौतिक चेतना में, भौतिक से भी नीचे लाने में लगा हूं। स्वभाव से ही भौतिक जड़ है और सचेतन नहीं होना चाहता। वह बहुत अधिक प्रतिरोध करता है और बदलने के लिए अनिच्छुक है।

वेद की भाषा में ऐसा लगता है कि "जमीन की खुदाई" हो रही है। यह सचमुच ऊपर के अतिमानस से नीचे के अतिमानस की ओर खोदना ही है। सत्ता सचेतन हो गयी है और ऊपर-नीचे की गति सतत चलती रहती है। वेद इसे "दो छोर" कहते हैं जो सर्प के सिर और पूंछ हैं। ये चेतना को घेरते और पूर्ण बनाते हैं। मैं देखता हूं कि जब तक जड़-द्रव्य का अतिमानवीकरण नहीं हो जाता तब तक मन और प्राण भी पूरी तरह अतिमानव नहीं बन सकते। इसलिए भौतिक को स्वीकारना और रूपान्तरित करना होगा। मैं अतिमानस के उच्चतम स्तर को भौतिक चेतना में लाने की कोशिश कर रहा हूं।

अन्तर्भासिक मन की त्रिविध क्रियाओं के साथ मेल खाती हुई अतिमानस की तीन परतें हैं। पहली को मैं व्याख्यात्मक (इंटरप्रेटेटिव) अतिमानस कहता हूं। मैं इसे व्याख्यात्मक इसलिए कहता हूं कि जो मन के लोक में सम्भावना है वह अतिमानस में जाकर शक्ति बन जाती है। व्याख्यात्मक अतिमानस सब प्रकार की शक्तियां तुम्हारे सम्मुख रख देता है। जो घटनाएं भौतिक जगत् में घट सकती हैं, वह उनका मूल कारण तुम्हें दिखा देता है। जब अन्तर्भास अपने अतिमानसिक रूप में बदलता है तो वह व्याख्यात्मक अतिमानस बन जाता है।

दूसरा है जिसे मैं प्रतिनिधि (रेप्रेज़ेंटेटिव) अतिमानस कहता हूं। वह शक्तियों की वास्तविक गतिविधि का चित्रण करता है और यह दिखाता है कि क्या हो रहा है। जब अन्तःप्रेरणा अतिमानसिक रूप में परिवर्तित होती है तो प्रतिनिधि-अतिमानस का रूप धारण करती है। यह उच्चतम अतिमानस नहीं है। तुम क्रिया करने वाली कुछ शक्तियों को जान लेते हो और बहुत बार यह कह सकते हो कि क्या होगा या अमुक चीज कैसे हुई या हो सकती है, लेकिन कोई निश्चितता नहीं होती।

अन्त में है अनिवार्य या आदेशात्मक (इंपेरेटिव) अतिमानस जो अन्तःप्रकाश से मेल खाता है। यह हमेशा सत्य होता है और कोई चीज इसके विरुद्ध खड़ी नहीं रह सकती। यह अपनी अन्तर्निष्ठ शक्ति से अपने-आपको परिपूर्ण करता हुआ ज्ञान है।

मुझे इन तीनों में भेद करना है और अनिवार्य अतिमानस को भौतिक में उतारने की कोशिश करनी है। इस तरह ऊपर और नीचे की सतत गति चलती रहती है। अब पूरी सत्ता सचेतन बन गयी है, लेकिन अब जरूरत इस बात की है कि कोई शक्ति भौतिक पर आक्रमण न कर सके। दूसरी चीज होगी, अन्दर की चीजों पर अनिवार्य (आदेशात्मक) अतिमानस को लागू करना और तीसरी, उसे बाहरी चीजों पर प्रयोग में लाना। अभी, जो भी शक्ति शरीर पर आक्रमण करे उसे अतिमानसिक शक्ति से हटा कर दूर किया जा सकता है। लेकिन जब प्रक्रिया पूरी हो जायेगी तो कोई भी सचेतन विरोधी शक्ति शरीर पर आक्रमण कर ही न सकेगी। इन बातों में मैं एक विशेष कार्यक्रम का अनुसरण कर रहा हूं जो पॉण्डिचेरी आने पर मेरे आगे रखा गया था।
'सान्ध्य-वार्ताएं' १५.८.१९२३

इस योग का लक्ष्य

श्रीअरविन्द : यह कुछ रिवाज-सा हो गया है कि आज के दिन मैं कुछ बोलूं। मैं नीरव चेतना द्वारा कुछ कहना अधिक पसन्द करूंगा, क्योंकि जहां वाणी मन को सम्बोधित करती है वहीं मौन चेतना गहराई तक जा पहुंचती है। हम सब मिल कर सामान्यतः प्रचलित योगों से एकदम भिन्न योग का अभ्यास कर रहे हैं। प्राचीन पद्धति के अनुसार हमें बुद्धि, भाव, इच्छा में से किसी को चुनना चाहिये, पुरुष और प्रकृति के बीच भेद करना चाहिये। इस तरह हम अपने मन, भावमय सत्ता, इच्छा या व्यष्टिगत पुरुष के परे ज्ञान की अनन्तता, सर्वप्रेममय, सर्वसुन्दर परम पुरुष या अनन्त निराकार निर्वैयक्तिक इच्छा तक जा पहुंचेंगे।

हमारे योग का लक्ष्य 'ज्ञान', 'इच्छा' या 'आनन्द' की निर्वैयक्तिक अनन्तता की तलाश नहीं है। वह परम सत्य की उपलब्धि चाहता है, एक अनन्त ज्ञान चाहता है जो मानव ज्ञान की सीमित अनन्तता के परे है, एक अनन्त शक्ति की खोज में है जो हमारी व्यक्तिगत इच्छा का स्रोत है और एक ऐसे आनन्द की टोह में है जिसे भावों की उपरितलीय गतियां पकड़ नहीं सकतीं।

हम जिस परम सत्ता तक पहुंचना चाहते हैं वह कोई निर्वैयक्तिक अनन्तता नहीं है, वह है दिव्य व्यक्तित्व; और उसे पाने के लिए हमें

अपने सच्चे व्यक्तित्व को जानना और पाना चाहिये। तुम्हें अपनी आन्तरिक सत्ता को पहचानना चाहिये। यह व्यक्तित्व आन्तरिक मन, आन्तरिक प्राण या आन्तरिक भौतिक सत्ता या उसकी चेतना नहीं है, जैसा कि बहुत-से मान बैठते हैं, यह तुम्हारी सच्ची सत्ता है जिसका उच्चतम के साथ सीधा सम्बन्ध है। मनुष्य धीरे-धीरे प्रकृति में विकसित होता है और हर एक को अपने 'दिव्य व्यक्तित्व' को जानना चाहिये, और वह है अतिमानस। हर एक सारतत्त्व में भगवान् के साथ एक है, परन्तु अपने स्वभाव और प्रकृति में परम पुरुष की आंशिक अभिव्यक्ति है।

चूंकि हमारे योग का यह उद्देश्य है अतः हम जीवन को ही बदलना चाहते हैं। पुराने योग जीवन को रूपान्तरित करने में असफल रहे, क्योंकि वे मन के परे नहीं गये। वे मानसिक अनुभूतियों को ले बैठते थे और जब उन्हें जीवन पर लागू करना चाहते थे तो बंधे हुए सूत्र या नियम में बदल देते थे। उदाहरण के लिए, अनन्त की मानसिक अनुभूति या वैश्व प्रेम के सिद्धान्त को लागू करना।

रूपान्तर की शर्तें

अतः हमें अपनी चेतना के सभी स्तरों पर सचेतन होना चाहिये और उच्चतर प्रकाश, शक्ति और आनन्द को नीचे उतार लाना चाहिये ताकि वे जीवन के एकदम बाहरी ब्योरों पर भी शासन कर सकें। हमें अपने-आपको अलग-थलग करके प्रकृति में होने वाली सभी चीजों पर नजर डालनी चाहिये, कोई छोटी-से-छोटी, एकदम बाहरी चीज भी हमारी दृष्टि से बच न पाये। यह प्रक्रिया मानसिक और प्राणिक स्तरों पर अपेक्षाकृत सरल है, लेकिन चैत्य-प्राण और भौतिक स्तरों पर अज्ञान की शक्तियों का राज्य होता है और वे अपनी बातों को शाश्वत विधान मान कर उन पर डटी रहती हैं। वे उच्चतर प्रकाश के पथ में बाधा देतीं और उनके आगे अपना झण्डा बुलन्द करती हैं। वहीं पर अन्धकार की शक्तियां बार-बार सत्ता को ढक लेती हैं और जब भौतिक-प्राण का उद्घाटन होता है, अज्ञान के तत्त्व भौतिक-सत्ता के निचले स्तरों से ऊपर उठ आते हैं; उनके साथ निबटना बड़े धीरज का काम है। भौतिक-प्राण और भौतिक सत्ताएं उच्चतर विधान को स्वीकार नहीं करतीं और अपनी बात पर डटी रहती हैं। वे बुद्धि का

उपयोग करके अपनी बातों का औचित्य सिद्ध करती हैं और इस तरह भिन्न-भिन्न छद्मवेशों में आकर साधक को ठगती हैं।

साधारणतः प्राणिक सत्ता बहुत अधीर होती है और भौतिक-प्राण और भौतिक स्तरों पर झटपट चीजें कर डालना चाहती है, लेकिन इसकी बड़ी उग्र प्रतिक्रियाएं होती हैं और इसलिए मानसिक और प्राणिक सत्ताओं को उच्चतर शक्तियों को पकड़ने की जगह अपने-आपको उनके आगे समर्पित कर देना चाहिये। हमें आंशिक रूपान्तर से सन्तुष्ट नहीं बने रहना है। हमें उच्चतर शक्ति को भौतिक स्तर तक उतारना चाहिये और उसके द्वारा जीवन की अत्यन्त बाहरी ब्योरेवाली चीजों पर शासन करना चाहिये। मन उन पर शासन नहीं कर सकता। हमें उच्चतर प्रकाश, शक्ति और आनन्द को उतरने के लिए उनका आवाहन करना चाहिये ताकि वे हमारी वर्तमान प्रकृति का रूपान्तर कर दें। इसके लिए सत्ता के हर अंग में, शुद्ध, अमिश्रित सच्चाई होनी चाहिये जो स्पष्ट रूप से देख सके कि सत्ता के हर भाग में क्या हो रहा है और कौन सत्य और केवल सत्य की मांग करता है।

प्रकाश के नीचे आकर जीवन के ब्योरे की छोटी-से-छोटी चीज पर शासन करने की दूसरी शर्त यह है कि व्यक्ति अतिमानस में स्थित अपने दिव्य व्यक्तित्व के बारे में सचेतन बने।

कई बार साधकों में अनुभूतियों से ही सन्तुष्ट हो जाने की वृत्ति होती है। तुम्हें केवल अनुभूतियों से सन्तुष्ट न हो जाना चाहिये।

दूसरी बात यह है कि यहां हम सब एक ही उद्देश्य को पाने के लिए इकट्ठे हुए हैं, अतः हमारे अन्दर एक तरह की एकता-सी पैदा हो गयी है जिससे हम एक दूसरे की सहायता कर सकते हैं या एक दूसरे के लिए बाधक हो सकते हैं।

सत्ता के रूपान्तर की शर्तें हैं, अपने-आपको उच्चतर प्रकाश की ओर खोलना और सम्पूर्ण भाव से समर्पण करना। इससे रूपान्तर आता है; अतः, यदि सम्पूर्ण भाव से समर्पण हो, प्रकाश की ओर उद्घाटन हो और सभी स्तरों पर धीरे-धीरे चेतना का विकास हो तो तुम इस योग के आदर्श साधक बन सकते हो।

'सान्ध्य-वार्ताएं' १५ अगस्त १९२४

अमरता का प्रश्न

शिष्य : जब प्राणिक सत्ता को अचञ्चलता, शक्ति और आनन्द प्राप्त हो जायें तो कभी-कभी यह विचार आता है कि शरीर भी अमर हो गया।

श्रीअरविन्द : यह होता है भौतिक शरीर पर प्राण की झलक पड़ने के कारण। प्राण-पुरुष अमर है और यह शरीर में भी अमरता का भाव पैदा करता है, लेकिन यह सच्ची विजय नहीं है। चन्दोद के स्वामी ब्रह्मानन्द की बात ले लो। वे तीन सौ वर्ष जिये, एक तरह से उन्होंने शरीर पर जरा-मृत्यु के प्रभाव पर विजय पा ली थी, लेकिन एक ज़ंग लगी कील के घाव से चल बसे। भौतिक स्तर पर अचानक कोई ऐसी चीज उठ खड़ी होती है जिस पर तुमने क्रिया नहीं की है और वह तुम्हें दिखा देती है कि तुम्हारी विजय अभी पूरी नहीं हुई है। इसी कारण प्रक्रिया में इतना अधिक समय लगता है, तुम्हें अपने शरीर के अणु-अणु में 'उच्चतर' चेतना को स्थापित करना चाहिये अन्यथा निम्न भौतिक सत्ता की गहराई की कोई चीज तुम्हारी दृष्टि से बच कर निकल जाती है और विरोधी शक्तियां जानती हैं कि वह स्थान कमजोर है और वहीं से हमला कर देती हैं। वे परिस्थितियों का ऐसा मेल पैदा कर देती हैं जो ऐसी चीज खड़ी कर देगा जिस पर कोई क्रिया नहीं की जा सकती और तुम उन पर नियन्त्रण कर पाओ इससे पहले वे नियन्त्रण से बाहर हो जाती हैं, उस हालत में वे तुम्हें नष्ट भी कर सकती हैं।

शिष्य : भौतिक इतना अन्धकारमय और हठीला क्यों है?

श्रीअरविन्द : यह प्रकृति है। यही व्यवस्था है। अगर भौतिक ऐसा न होता तो चीज आसानी से और बहुत पहले हो चुकी होती, यूं कल्पों और मन्वन्तरों की जरूरत न पड़ती और साधना बहुत आसान होती, लेकिन भगवान् नहीं चाहते कि काम आसानी से हो।...

शिष्य : यह समाप्त कब होगा?

श्रीअरविन्द : तुम चाहते हो कि मैं भविष्यवाणी करूं? यह पूरी तरह मेरे ऊपर निर्भर नहीं है। समय के बारे में हम मुश्किल से ही कुछ जान सकते हैं और सीमा बांधने से शायद समय और ज्यादा लम्बा हो जाये जैसा "एक वर्ष में स्वराज्य" के साथ हुआ। और फिर जिस योगी को क्रिया में भाग लेना होता है उसे परम पुरुष सब कुछ नहीं दिखाते। जब वैश्व शक्तियां तैयार हों तभी उसे सब कुछ दिखलाया जाता है; और जो पूरी तरह तटस्थ हो वह और भी अधिक चीजें देख सकता है और फिर परम प्रभु वैश्व परिस्थितियों के पूरी तरह तैयार होने से पहले हर चीज का विस्तार से निश्चय नहीं कर लेते। जब परिस्थितियां तैयार हों तो तीव्रता से आदेशात्मक निर्णय उतरता है। इन दोनों के बीच में वैश्व शक्तियों की लीला होती है। उदाहरण के लिए, किसी ऐसी बीमारी को लो जिसकी ओर तुम्हारा शरीर स्वाभाविक रूप से प्रवृत्त है। जब तुम उस पर क्रिया कर चुको तो पता चलता है कि वही चीज किसी और रूप में उभर रही है। जब तक तुम ब्योरे की सभी चीजों के साथ न निबट लो तब तक उससे पिण्ड नहीं छुड़ा सकते। तब तक तुम्हें केवल सम्भावनाएं और नैतिक निश्चितियां ही दिखलायी देंगी। ऐसी बात नहीं है कि परम पुरुष निश्चित रूप से नहीं जानते; वे केवल तब तक हस्तक्षेप नहीं करते जब तक वैश्व परिस्थितियां तैयार न हो जायें। वैश्व शक्तियां जिस परिणाम पर आ पहुंचती हैं वही परम पुरुष का निश्चय होता है।

शिष्य : जहां तक भौतिक का सवाल है क्या वैश्व परिस्थितियां तैयार हैं?

श्रीअरविन्द : भौतिक चेतना में सामान्य शर्तें पूरी हो चुकी हैं, लेकिन अभी पूरी तरह से जड़ स्तर बाकी है और वह सबसे अधिक खतरनाक है।

शिष्य : वह सबसे अधिक खतरनाक क्यों है?

श्रीअरविन्द : क्योंकि वह ठोस, कसा हुआ है, वह अपने पदार्थ को अर्पित करने या छोड़ने से पूरी तरह इन्कार कर सकता है। वह समझाने-बुझाने से बिलकुल नहीं मानता, उसके साथ व्यवहार करने के लिए तुम्हें उच्चतम दिव्य शक्ति की जरूरत होती है। सारे संसार के संस्कार तुम्हारे विरुद्ध होते

हैं। ऊपर से किसी चीज को उतारना और इन बाधाओं को हटाना होगा।
'सान्ध्य-वार्ताएं' १५ अगस्त १९२४

अतिमानस के बारे में कुछ गलतफहमियां

हमारे योग का लक्ष्य है अतिमानसिक सत्ता की, अतिमानसिक जगत् और अतिमानसिक प्रकृति की खोज और उनकी अपने जीवन में अभिव्यक्ति। लेकिन हमें अपने-आपको कुछ ऐसी सामान्य भूलों से बचाये रखना चाहिये जो प्रायः हुआ करती हैं। कुछ लोगों का ख्याल है कि कुछ सिद्धियां, जैसे अणिमा, गरिमा आदि, भौतिक क्रिया-कलाप पर अधिकार, शरीर को नीरोग करने की क्षमता—ये चीजें अतिमानसभावापन्न शरीर के घटक हैं। कई ऐसे लोग ये शक्तियां पा लेते हैं जो जाने-अजाने अपने-आपको अन्तस्तलीय सत्ता की ओर खोल देते हैं जहां ये शक्तियां पायी जाती हैं। ऐसे बहुत से उदाहरण हैं जहां ये शक्तियां ऐसे लोगों में पायी जाती हैं जिन्हें अतिमानस या योग के बारे में कुछ भी पता नहीं होता।

कुछ लोगों का ख्याल है कि अतीत में इस योग के लिए अनगिनत बार प्रयास किया जा चुका है, कि बहुत बार 'ज्योति' का अवतरण भी हुआ है और वह बार-बार आकर लौट गयी है। यह बात ठीक नहीं मालूम होती। मुझे लगता है कि अभी तक अतिमानसिक शरीर को नीचे नहीं उतारा गया है : अन्यथा वह बना रहता। इसलिए हमें अपने प्रयास को तुच्छ समझ कर उसकी उपलब्धि के मार्ग में बाधाएं न डालनी चाहियें।

अभी समय नहीं आया है कि यह बतलाया जा सके कि अन्त में रूपान्तर क्या रूप लेगा। पुराने योगियों ने जो कर दिखाया था वह शारीरिक क्रिया-कलाप पर अधिकांशतः प्राण के नियन्त्रण का परिणाम था। वह प्राणिक सिद्धि हमारा उद्देश्य नहीं है जिससे प्राणिक शक्ति द्वारा भौतिक द्रव्य और उसकी क्रियाओं पर अधिकार पाया जा सके। हम जिस चीज को प्राप्त करने का प्रयास कर रहे हैं वह है, अपनी समस्त सत्ता का—अभिव्यक्ति के सभी स्तरों पर—पूर्ण रूपान्तर लाना। पुरानी साधनाओं का लक्ष्य भौतिक सत्ता पर विजय या उसका रूपान्तर नहीं था। उन्होंने उस पर कोई पकड़ नहीं पायी थी।

फिर यह विचार है कि चूंकि हर चीज 'एकमेव' ही है इसलिए हमें

'एकमेव चेतना' को प्राप्त करना और अपनी सत्ता के विभिन्न स्तरों पर उसकी कुछ उपलब्धियां प्राप्त करनी हैं। यह वेदान्ती विचारों के प्रभाव से आने वाली भूल है। हमें बस इतनी-सी उपलब्धि पाकर रुक नहीं जाना है, जैसा कि मैंने कहा, हमें सारी सत्ता को रूपान्तरित करना है।

एक विचार यह है कि हमारा योग सचेतन क्रमविकास के लिए एक प्रयास है। आत्मा जड़-भौतिक में अन्तर्लीन है और उसके अधीन मालूम होती है। क्रमविकास की क्रिया द्वारा प्राणिक और मानसिक सत्ताएं यहां जीवन में प्रकट हुई हैं। हमारा प्रयास यह है कि मन में से अतिमानस को प्रकट करें।

आरोहण और अवरोहण

तैतिरीय उपनिषद् में भौतिक के प्राण में, मन में, विज्ञान में, और फिर आनन्दमय चेतना में उठाये जाने की बात कही गयी है। एक और उपनिषद् का कहना है कि जो मनुष्य विज्ञान (अतिमानस) को प्राप्त करता है वह "सूर्य के द्वार" से बाहर निकल जाता है। विज्ञान तक पहुंच कर उसके सचेतन अवतरण की बात कहीं नहीं आती।...

अपनी साधना में हम यह भी देखते हैं कि आरोहण की एक गति है, लेकिन वही सब कुछ नहीं है। हमें केवल आरोहण से ही सन्तुष्ट होकर न बैठ रहना चाहिये। हमें सचेतन रूप से उतर कर अतिमानसिक ज्योति, सत्य, सामञ्जस्य को नीचे उतारना है ताकि वे हमारी प्रकृति—मन, प्राण और शरीर पर शासन करें और उसे रूपान्तरित करें।

... लोग सोचते हैं कि हर एक यह योग कर सकता है, लेकिन यह आंशिक सत्य है। सबको यह योग करने की पुकार नहीं हुई है। यह कहा जा सकता है कि सब लोगों में यह योग करने की छिपी हुई क्षमता है, लेकिन उससे उन्हें इस योग के लिए एक हद तक तैयारी करने में सहायता मिलती है। विस्तृत मानसिक फैलाव, प्राणिक प्रकृति की निम्नतर वृत्तियों को अस्वीकार करने का कठिन और लम्बा काम और उससे भी अधिक कठिन भौतिक सत्ता में परिवर्तन लाना—ये ऐसी चीजें हैं जिनके लिए हर एक कोशिश नहीं कर सकता। हम चाहते हैं कि पहले अपनी सारी सत्ता को अतिमानसिक प्रकृति में बदल दें। लेकिन यहीं पर इति नहीं हो जाती,

हमें उस शक्ति को नीचे बुला कर बाहरी जीवन पर प्रयुक्त करना और वहां भी सत्य और सामञ्जस्य को स्थापित करना है। मैं तुम्हें बतला ही चुका हूं कि अभी वह समय नहीं आया है कि यह कहा जा सके कि अन्तिम रूपान्तर का स्वरूप कैसा होगा। जब समय आयेगा तो वह अपने-आपको प्रकट करेगा। तुमसे बस यही मांग की जाती है कि अपने-आपको सत्य के प्रति अधिकाधिक खोलो। बाकी सब परम ईश्वर की इच्छा के अनुसार होगा।
'सान्ध्य-वार्ताएं' १५ अगस्त १९२५

अतिमानसिक योग तथा पार्थिव अवस्थाएं

मैं कोई अलग-थलग एकाकी योग नहीं कर रहा, जब मैंने 'हमारा योग और उसका उद्देश्य' में वह वाक्य लिखा था जिसका बहुत दुरुपयोग हुआ है, तो उसके पीछे कुछ सत्य था, यद्यपि उस समय मैं उससे अनभिज्ञ था। यह सच है कि मेरा योग मानवजाति के लिए नहीं है, लेकिन वह स्वयं मेरे लिए भी नहीं है। निश्चय ही, औरों के सिद्धि पाने से पहले यह शर्त है कि पहले मैं सिद्धि तक पहुंच सकूं। अगर मैं स्वयं अपनी मुक्ति या अपनी पूर्णता ही चाहता तो मेरा योग कब का समाप्त हो चुका होता।

शिष्य : आपने तीसरे पहर के वक्तव्य में कहा था कि भौतिक स्तर पर इससे पहले किसी ने परीक्षण नहीं किया।

श्रीअरविन्द : मैंने यह नहीं कहा कि भूतकाल में कोई प्रयास ही नहीं किया गया। प्रयास तो किये गये थे पर भौतिक स्तर पर कोई स्थिर प्राप्ति नहीं हुई, कोई आधार नहीं खड़ा किया गया। अगर कुछ किया गया होता तो अधूरा, अधकचरा ही सही, उस आंशिक प्राप्ति का कोई तो चिह्न रहता। देखो, मन में चाहे जितनी आंशिक उपलब्धि हुई हो पर उसके लक्षण तो हैं। प्राण में भी यही दशा है लेकिन भौतिक स्तर पर इसकी कोई निशानी नहीं है।

शिष्य : इसका मतलब तो यह हुआ कि अतिमानस को भौतिक स्तर तक लाने के लिए वातावरण तैयार करना बाकी है?

श्रीअरविन्द : यही तो सारा प्रयास है। अगर तुम चाहते हो कि यह इस बार सफल हो तो तुम्हें उसके लिए तैयारी करनी होगी। (अपनी ओर इशारा करते हुए) यह है केन्द्र, इतना आश्वासन तुम इससे ले सकते हो, लेकिन अगर हम सफल होना चाहें तो इस सबको एक पक्ष में होना चाहिये। अगर तुम विरोधी सुझावों को स्थान दो तो जहां तुम अपनी प्रगति को रोकते हो वहां औरों के लिए भी सामान्य प्रगति की राह में बाधा खड़ी करते हो।

शिष्य : भौतिक प्रकृति के प्रतिरोध को रोकने के लिए क्या करना चाहिये?

श्रीअरविन्द : तुम्हारे अन्दर सत्य के लिए सम्पूर्ण अभीप्सा होनी चाहिये। यह सच है कि साधना में ऐसे समय आते हैं जब मन में अवसाद आ जाता है और उच्चतर उपस्थिति पर परदा पड़ जाता है, ज्ञान धुंधला पड़ जाता है। ऐसे समय अभीप्सा और श्रद्धा, जिसे रामकृष्ण "अन्ध श्रद्धा" कहते हैं, ही व्यक्ति की सहायता करती है। सचमुच वह श्रद्धा "अन्धी" नहीं होती। वह अन्तरात्मा की स्मृति होती है। अगर 'कूए' के रोगशमन के लिए श्रद्धा जरूरी है तो अतिमानस को नीचे लाने के लिए वह और भी अधिक जरूरी है।
'सान्ध्य वार्ताएं' १५ अगस्त १९२५

भागवत 'प्रेम' और 'सौन्दर्य' तथा 'आनन्द' को इस धरा पर उतार लाना ही सचमुच हमारे योग का मुकुट और सारतत्त्व है। लेकिन जब तक उसके आधार, उसकी नींव तथा रक्षक के रूप में 'भागवत सत्य'—जिसे मैं अतिमानस पुकारता हूं—तथा 'भागवत शक्ति' न उतर आयें तब तक मुझे यह कार्य हमेशा असम्भव-सा प्रतीत होता है।
CWSA खण्ड ३५, पृ. ८३७ *—श्रीअरविन्द*

वैश्व अवस्थाओं की तैयारी के चिह्न

शिष्य : आज पहले की अपेक्षा अतिमानसिक अवतरण के लिए परिस्थितियां अधिक अनुकूल कैसे हैं?

श्रीअरविन्द : पहली बात तो यह है कि भौतिक जगतों का ज्ञान इतना बढ़ गया है कि वह अपनी सीमाएं तोड़ने की-सी स्थिति में हो रहा है।

दूसरे, सारे जगत् में बाहरी और भीतरी मन, बाहरी और भीतरी प्राण, बाहरी और भीतरी भौतिक के परदों को फाड़ने की कोशिश की जा रही है। मनुष्य अधिक 'चैत्य' बन रहे हैं।

तीसरे, प्राण भौतिक पर इस तरह कब्जा करने की कोशिश कर रहा है जैसी उसने पहले कभी नहीं की। यह एक निश्चित चिह्न है कि जब कभी उच्चतर सत्य नीचे आने की कोशिश करता है तो वह विरोधी प्राणिक शक्ति को धरती पर उछालता है और भांति-भांति की असामान्य प्राणिक अभिव्यक्तियां दिखलायी देती हैं, जैसे पागल होने वालों की संख्या बढ़ जाती है, भूकम्प बढ़ जाते हैं इत्यादि।

चौथे, यह भी कि रेल, तार, हवाई जहाज आदि आधुनिक विज्ञान की खोजों के कारण जगत् में ज्यादा एकत्व आ रहा है। यह एकत्व उच्चतम सत्य के अवतरण के लिए एक शर्त है और यही हमारी कठिनाई है।

पांचवे, ऐसे लोगों की संख्या में वृद्धि जिनका बड़ी संख्या में लोगों पर जबर्दस्त प्राणिक प्रभाव है।

ये कुछ ऐसी निशानियां हैं जिनसे लगता है कि आज वैश्व परिस्थिति ज्यादा तैयार है। निस्सन्देह, हम पिछले प्रयासों की परिस्थितियों के बारे में कुछ भी नहीं जानते, लेकिन जहां तक हम देख सकते हैं ये परिस्थितियां हमारे प्रयास को उचित ठहराती हैं।

'सान्ध्य वार्ताएं' १५ अगस्त १९२५

श्रीअरविन्द ने हमें कुछ अद्‌भुत चीजें बतलायी हैं जिन्हें भविष्य धरती पर लायेगा और हमें प्रोत्साहन दिया है कि हम अपने-आपको उसके लिए तैयार करें।

—श्रीमां

वैश्व शक्तियों के बारे में आवश्यक ज्ञान

शिष्य : क्या आप यह मानते हैं कि वैश्व शक्तियों का ज्ञान योग का आवश्यक अंग है?

श्रीअरविन्द : हां! क्योंकि तुम्हें ऐसी विरोधी शक्तियों से काम पड़ता है जो अपना प्रभाव डालती हैं, और हमें उन्हें भी जानना चाहिये जो सहायता करती हैं। यहां तक कि जब तुम व्यक्तिगत साधना करते हो तब भी ये शक्तियां अपना अनुभव कराती हैं। हां, जैसे-जैसे तुम विकसित होते जाते हो, उनका रूप पूरी तरह बदलता जाता है। इन वैश्व शक्तियों की गतिविधि निचले स्तरों पर शुरू नहीं होती। वह ज्यादा ऊंचाई पर शुरू होती है। यह सच है कि सभी निश्चय ऊपर किये जाते हैं लेकिन उनका जिन स्तरों से सम्बन्ध होता है उनका पता नहीं लगने दिया जाता। बीच में एक परदा आ जाता है और हर लोक को अपने निश्चय आप करने की छूट दी जाती है। संघर्ष में लगी शक्तियों को यह छूट दी जाती है कि वे अपना फैसला आप करें। जब निर्णायक मोड़ आ जाता है केवल तभी उच्चतम निर्णय की जानकारी दी जाती है; तुम कम ज्ञान को पाने की कोशिश करके ज्यादा बड़े ज्ञान के विकास में सहायता दे सकते हो।...

तुम एकाग्र अभीप्सा द्वारा इस प्रयास में सहायता कर सकते हो, इस आदर्श को चरितार्थ करने के रास्ते में आयी सभी बाधाओं को तुम्हें अस्वीकार करना होगा। लेकिन वह करने की जगह अगर तुम विरोधी शक्तियों के सुझाव सहते चले जाओ और उनके मन्त्र जपते रहो जो तुमसे तथा औरों से कहते हैं कि यह सम्भव नहीं है तो तुम उनकी सहायता करोगे।

'सान्ध्य वार्ताएं' १५ अगस्त १९२५

सभी भागों का सक्रिय सहयोग

आज मैं १५ अगस्त के बारे में कुछ शब्द कहूंगा।... तुम सिद्धान्त रूप से जानते हो कि वह लक्ष्य, योग क्या है। वह है, धरती पर साधारण मनुष्य को सन्तुष्ट करने वाली चेतना, शक्ति, सत्य, सद्वस्तु से भिन्न 'चेतना', 'शक्ति', 'सत्य का प्रकाश' और 'दिव्य सद्वस्तु' को उतार कर लाना जो पार्थिव चेतना को ऊंचा उठाने और यहां की हर चीज का रूपान्तर करने

के लिए नियत है।

यह तब तक नहीं हो सकता जब तक कि ऊपर से निर्णय न हो, लेकिन साथ ही यह तब तक भी नहीं हो सकता जब तक कि स्वयं पार्थिव चेतना अपने किन्हीं अंशों में, उन लोगों में से कुछ में, जो यहां निचले स्तर पर निवास करते हैं, उसे ग्रहण करने के लिए तैयार न हो। एक बार यह 'चेतना', यह 'शक्ति' उतर आये तो वह चिरकाल के लिए उन लोगों के लिए बनी रहेगी जो उसे पाने के लिए इच्छुक और योग्य हैं।

लेकिन हमने इस दिन को एक विशेष महत्त्व दिया है और अगर हम उस 'सत्य' में निवास करें जिसका यह प्रतीक है तो यह उचित होगा। हम इस दिन को व्यक्तिगत और सामान्य प्रगति की एक भूमिका के रूप में मान सकते हैं। इस दिन को उत्सर्ग, आत्म-परीक्षा और भविष्य की प्रगति के लिए तैयारी का दिन और अगर सम्भव हो तो ऐसी शक्ति के स्वागत का दिन बना सकते हैं जो प्रगति के काम को आगे बढ़ायेगी।

यह काम हर एक व्यक्तिगत रूप से कर सकता है अगर वह इस दिन सच्ची मनोवृत्ति अपनाए और उचित स्थिति में रहे।

१५ अगस्त—एक निर्णायक दिवस

असल में हमलोग ही इस दिन को निर्णायक बना सकते हैं। हमलोग ही इसकी पूर्ति में सहायक हो सकते हैं।

पहले से ही आत्मोत्सर्ग होना चाहिये, अपने अन्दर भूतकाल पर नजर डालनी चाहिये कि हम कहां तक पहुंचे हैं, हमारे अन्दर कौन-सी चीज तैयार है, कौन-सी चीज नहीं बदली जिसे बदलना बाकी है, कौन-सी चीज एक पूर्ण रूपान्तर के लिए पीछे खड़ी प्रतीक्षा कर रही है, अभी तक कौन-सी चीज प्रतिरोध कर रही है और कौन-सी अंधेरी है। अभीप्सा होनी चाहिये, हम जिस परिवर्तन को जरूरी मानते हैं उसे सिद्ध करने के लिए शक्ति का नीचे आह्वान होना चाहिये।

अगर हम इस दिन स्वयं को इधर-उधर बिखेरते फिरें तो हम कुछ नहीं कर सकते। उसकी जगह होनी चाहिये तीव्र एकाग्रता ताकि आन्तरिक सत्ता तैयार होकर 'प्रकाश' को ग्रहण करने के लिए ऊपर को उठे। हम जिस अनुपात में बाहरी रूप देने वाली गति को स्वीकार करते हैं, हम

उच्चतर क्रिया में बाधा डालते हैं और आन्तरिक परिवर्तन के लिए जरूरी ऊर्जा का अपव्यय करते हैं। साधारण दिन के क्रिया-कलाप के अतिरिक्त जो कुछ किया जाये वह या तो इस गति के अंग के रूप में या फिर इस तरह किया जाये जैसे वह सत्ता की बाहरी सीमा के बाहर है और आन्तरिक गतिविधि को अस्तव्यस्त नहीं कर सकता। और दिन की सभी चीजों का उपयोग प्रगति के लिए किया जाये।

और अगर तुम सवेरे मेरे पास आओ तो यह रूढ़िगत प्रथा को पूरा करने के लिए न हो, तुम्हारी अन्तरात्मा और तुम्हारा मन ग्रहण करने के लिए तैयार हों। अगर इस समय तुम मेरी बात सुन रहे हो, अगर यह सिर्फ तुम्हारी मानसिक रुचि को सन्तुष्ट करने वाली चीज है तो मेरा चुप रहना ही ज्यादा ठीक होगा। लेकिन अगर यह कहीं पर तुम्हारी आन्तरिक सत्ता या अन्तरात्मा को छूता है तभी इस दिन का कुछ उपयोग या उद्देश्य है और ध्यान भी ऐसी अवस्था में करना चाहिये कि अगर कोई निर्णायक चीज न भी उतरे फिर भी अन्दर कुछ रिस कर तो जा ही सके जिसका परिणाम बाद में आये।

हमारे योग की दृष्टि से १५ अगस्त का एक अर्थ यह भी है।

'सान्ध्य-वार्ताएं' १५ अगस्त १९२६

जड़-भौतिक का प्रतिरोध

शिष्य : इस बार आप हमारे प्रयास की सफलता के बारे में क्या कहेंगे? पिछली बार आपने कहा था कि आप उसके बारे में निश्चित थे।...

श्रीअरविन्द : मैं कह सकता हूं कि मैं नैतिक रूप से निश्चित हूं परन्तु व्यावहारिक रूप से नहीं। मैं व्यावहारिक रूप से निश्चित नहीं हूं क्योंकि भौतिक जगत् को कोई पश्चात्ताप नहीं है। सबसे बड़ी बाधा जो शायद अलंघ्य हो, जड़-भौतिक जगत् का प्रतिरोध है।

शिष्य : "पश्चात्ताप नहीं है" से आपका क्या मतलब है?

श्रीअरविन्द : पश्चात्ताप नहीं है का मतलब है कि जड़ जगत् भगवान् या भागवत जीवन के लिए तनिक भी परवाह नहीं करता।

शिष्य : जड़-भौतिक जगत् के प्रतिरोध से आपका क्या मतलब है?

श्रीअरविन्द : उसकी किसी उच्चतर चीज की ओर खुलने की असम्भावना, और वह जिसके लिए अभ्यस्त है उससे जरा भी भिन्न सोचने की अक्षमता। मेरा मतलब मनुष्य की मूढ़ता और उसके अन्धेपन से है। जब मैं जड़-भौतिक के प्रतिरोध की बात करता हूं तो मेरा मतलब बाहरी जड़-भौतिक से नहीं बल्कि सूक्ष्म जड़ से होता है। सूक्ष्म और बाह्य जड़ होता है और जब मैं कहता हूं कि जड़-भौतिक अभेद्य है तो मेरा मतलब यह होता है कि सूक्ष्म जड़ ने सत्य को स्वीकारा नहीं है, जड़-भौतिक मन ने उच्चतर सत्य को नहीं स्वीकार किया है। भौतिक शक्ति के कोषाणुओं में एक अपनी चेतना होती है और उस चेतना को अपने-आपको सत्य की ओर खोलना चाहिये। लेकिन जड़-भौतिक मन रूपान्तर की दिव्य सम्भावना पर विश्वास नहीं करता। और जैसा कि मैंने कहा, हमारे लिए जब तक यह सब कुछ न हो जाये तब तक कुछ नहीं हुआ।

शिष्य : और आप नैतिक दृष्टि से निश्चित कैसे हैं?

श्रीअरविन्द : क्योंकि मैं अधिकाधिक शक्ति को भौतिक में उतरते हुए देखता हूं और भौतिक सत्ता जागरण के लक्षण दिखा रही है।

'सान्ध्य-वार्ताएं' १५ अगस्त १९२६

मेरे प्रभो, चेतना को स्पष्ट और यथार्थ बना, वाणी को पूरी तरह सच्चा बना, समर्पण पूर्ण हो, स्थिरता सम्पूर्ण और सारी सत्ता को प्रकाश और प्रेम के सागर में रूपान्तरित कर दे।

—श्रीमां

अविश्वासी मन सर्वदा सन्देह करता है, क्योंकि वह समझ नहीं सकता; परन्तु भगवत्-प्रेमी का विश्वास जानने के लिए आग्रह करता है यद्यपि वह समझ नहीं पाता। हमारे अन्धकार के लिए ये दोनों ही आवश्यक हैं। परन्तु इस विषय में कोई सन्देह नहीं कि उन दोनों में से अधिक शक्तिशाली कौन है। जिसे मैं अभी नहीं समझ पाता उसे किसी दिन आयत्त कर लूंगा, पर यदि मैं विश्वास और प्रेम को ही खो बैठूं तो उस लक्ष्य से बिलकुल भ्रष्ट हो जाऊंगा जिसे भगवान् ने मेरे सामने रखा है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १०, पृ. ३९९

योग का लक्ष्य जीवन का त्याग नहीं, उसकी परिपूर्ति है

(किसी साधक ने मोतीबाबू से कहा कि श्रीअरविन्द शंकराचार्य के बहुत निकट जाते हुए दीख रहे हैं। श्रीअरविन्द ने १५ अगस्त १९२३ को उस साधक से, जब वह पॉण्डिचेरी में था, कहा था कि हमें जीवन के अज्ञान को स्वीकार नहीं करना चाहिये और चूंकि साधारण जीवन अज्ञान से भरा हुआ है, एकमात्र सम्भव हल यही होगा कि इस सामान्य जीवन को त्याग दिया जाये, इसी सिद्धान्त को शंकराचार्य मानते हैं; अतः श्रीअरविन्द शंकराचार्य के निकट हैं और उनके पास हमें देने के लिए कोई नयी चीज नहीं हैं।)

श्रीअरविन्द : यह है मेरे योग को पूरी तरह से गलत समझना, जिसका लक्ष्य जीवन का त्याग नहीं बल्कि जीवन की उपलब्धि है। निस्सन्देह, —साधारण जीवन अज्ञान से भरपूर है, लेकिन अज्ञान के बिना जीना असम्भव नहीं है। वस्तुतः, क्रमविकास का अर्थ है—सम्पूर्ण सचेतनता के साथ जीना। जड़-भौतिक तथा जीवन में एक अज्ञान भरा है जो हमारे सामने कठिनाइयों के पहाड़ खड़े कर देता है और जब हम सचेतन जीवन की ओर प्रगति करते हैं तो हमें अतिमानस के साधनों द्वारा इन भीमकाय बाधाओं को जीतना होता है। साधना में कई उतार-चढ़ाव-घुमाव आते ही रहते हैं। उन्हें समझना पड़ता है और साधारण जीवन को रूपान्तरित करने के लिए उनका उपयोग करना होता है। शंकराचार्य ने 'विज्ञान' को उच्चतर मानसिक चेतना के रूप में जाना और चूंकि वह था तो मानसिक ही, उन्होंने उस 'विज्ञान' को त्याग दिया; शंकराचार्य जीवन-अभिव्यक्ति में विश्वास नहीं करते थे, उनके लिए वह माया थी। जीवन की अभिव्यक्ति तो भागवत शक्ति का सत्य है और इसे स्वीकारना ही होगा। यह शक्ति हमारे अन्दर कार्य कर रही है और हमारे लिए यह सम्भव है कि हम उस शक्ति के साथ स्वयं को तदात्म करके, इस धरती पर भागवत अभिव्यक्ति में हिस्सा ले सकें। कुछ समय तक मैं भी 'विज्ञान' को समझ न पाया था और मैं उच्चतर मानसिक चेतना को 'विज्ञान' मान बैठा था।

केवल ध्यान में उच्चतर चेतना को उपलब्ध करना पर्याप्त नहीं है। जीवन के सामान्य कार्य करते हुए भी हमें उसकी क्रियाशील उपस्थिति को अनुभव कर सकना चाहिये। स्वयं अतिमानस अपने-आप में 'दिव्य-चेतना'

है जो विश्व की गतियों को व्यवस्थित करती तथा उनका मार्गदर्शन करती है। इस चेतना को हमारा सामान्य स्वभाव बन जाना चाहिये और हमें इसे यह अनुमति देनी होगी कि यह यहां उतर कर हमारे मन, प्राण और शरीर को रूपान्तरित कर दे।

अहंकारी मानव प्रयास का कोई मूल्य नहीं। होना चाहिये पूर्ण समर्पण ताकि उच्चतर शक्ति उतर कर कार्य कर सके। अतिमानसिक चेतना को उपलब्ध करना कठिन नहीं है, लेकिन उसे क्रियाशील बनाना बहुत कठिन है। अतः कई महान् अन्तरात्माओं ने इस चेतना को उपलब्ध कर लेने के बाद मन के द्वारा कार्य किया और उसे मानसिक शब्दावलियों में परिणत कर दिया। इसी कारण वे अतिमानसिक चेतना की सच्ची प्रकृति में उसके क्रिया-कलाप का अनुभव न कर पाये। इस नयी प्रक्रिया को हाथ में लेने का प्रयास अभी तक किसी ने भी नहीं किया है।...

Champaklal Treasures से पृ. २२०-२१

भारतमाता को आवाहन

हे हमारी मां, हे भारत की आत्म-शक्ति, हे जननी, तूने कभी, अत्यन्त अन्धकारपूर्ण अवसाद के दिनों में भी, यहां तक कि जब तेरे बच्चों ने तेरी वाणी अनसुनी कर दी, अन्य प्रभुओं की सेवा की और तुझे अस्वीकार कर दिया, तब भी तूने उनका साथ नहीं छोड़ा। हे मां, आज, इस महान् घड़ी में जब कि वे जाग उठे हैं और तेरी स्वतन्त्रता के इस उषःकाल में तेरे मुख-मण्डल पर ज्योति पड़ रही है, हम तुझे नमस्कार कर रहे हैं। हमें पथ दिखा जिसमें स्वतन्त्रता का जो विशाल क्षितिज हमारे सामने उन्मुक्त हुआ है वह तेरी सच्ची महानता का तथा विश्व के राष्ट्र-समाज के अन्दर तेरे सच्चे जीवन का भी क्षितिज बने। हमें पथ दिखा जिसमें हम सर्वदा महान् आदर्शों के पक्ष में ही खड़े हों और अध्यात्म-मार्ग के नेता के रूप में तथा सभी जातियों के मित्र और सहायक के रूप में तेरा सच्चा स्वरूप मनुष्यजाति को दिखा सकें।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ३८२

१५ अगस्त १९४७ : भारत के लिए सन्देश

पुराने युग का अवसान और नये युग का उदय

१५ अगस्त स्वाधीन भारत का जन्मदिन है। यह दिन भारत के लिए पुराने युग की समाप्ति और नये युग का प्रारम्भ सूचित करता है। परन्तु इसका महत्त्व हमारे लिए ही नहीं, बल्कि एशिया और सम्पूर्ण संसार के लिए भी है; क्योंकि यह राष्ट्रों की बिरादरी में एक नयी शक्ति के प्रवेश का सूचक है जिसमें अवर्णनीय सम्भावनाएं हैं और जिसे मानवजाति के राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक भविष्य के निर्धारण में एक बड़ी भूमिका निभानी है। व्यक्तिगत रूप में मेरे लिए यह स्वभावतः प्रसन्नता की बात है कि इस दिन ने, जो केवल मेरे लिए ही महत्त्वपूर्ण था क्योंकि यह मेरा जन्मदिन है जिसे जीवन-सम्बन्धी मेरी शिक्षा को मानने वाले लोग प्रतिवर्ष मनाते हैं, यह विशाल अर्थ तथा महत्त्व प्राप्त कर लिया है। एक गुह्यवेत्ता के रूप में मैं, अपने जन्मदिन के भारतीय स्वाधीनता-दिवस के साथ इस प्रकार एक हो जाने को कोई दैवयोग या आकस्मिक संयोग नहीं मानता, बल्कि यह मानता हूं कि जिस कार्य को लेकर मैंने अपना जीवन आरम्भ किया था उसे मेरा पथ-प्रदर्शन करने वाली भागवत शक्ति ने अपनी अनुमति दे दी है और उस पर अपनी मुहर भी लगा दी है। निस्सन्देह, आज के दिन मैं प्रायः उन सभी जागतिक आन्दोलनों को, जिन्हें मैंने अपने जीवनकाल में ही सफल होते देखने की आशा की थी, पर जो उस समय असम्भव स्वप्न जैसे ही दिखायी देते थे, सफलता के निकट पहुंचते देख सकता हूं या फिर उनका समारम्भ हो गया है और वे अपनी सफलता की ओर बढ़ रहे हैं।

इस महान् अवसर पर मुझसे सन्देश देने की प्रार्थना की गयी है, पर शायद मैं सन्देश देने की स्थिति में नहीं हूं। मैं बस इतना ही कर सकता हूं कि उन लक्ष्यों और आदर्शों की व्यक्तिगत घोषणा कर दूं जिन्हें मैं अपनी बाल्यावस्था और यौवन से पोसता आया हूं और जिनकी पूर्ति को मैं अब आरम्भ होते देख रहा हूं, क्योंकि वे भारत की स्वाधीनता से सम्बद्ध हैं और उस कार्य के अंग हैं जिसे मैं भारत का भावी कार्य मानता हूं और जिसमें वह प्रमुख स्थान लिये बिना नहीं रह सकता। वस्तुतः मेरा हमेशा से ही यह

सर्वशक्तिमान् होने के नाते भगवान् धरती पर उतरने का झंझट किये बिना ही लोगों को ऊपर उठा सकते हैं। अवतारवाद का तभी कुछ अर्थ होता है जब वह सांसारिक व्यवस्था का एक अंग हो, भगवान् मानवजाति का भार अपने ऊपर लें और उसके लिए रास्ता खोलें।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १५, पृ. १९

विश्वास रहा है और मैंने हमेशा यह कहा भी है कि भारत केवल अपने भौतिक हितों की सिद्धि के लिए, विस्तार, महानता, शक्ति और समृद्धि पाने के लिए नहीं उठ रहा—यद्यपि इनकी भी उसे उपेक्षा नहीं करनी होगी—और निश्चय ही वह दूसरों की तरह अन्य देशों पर आधिपत्य जमाने के लिए भी नहीं उठ रहा, बल्कि वह उठ रहा है सारी मनुष्यजाति के सहायक और नेता के रूप में परमेश्वर और जगत् के हित के लिए। वे लक्ष्य और आदर्श अपने स्वाभाविक क्रम में ये थे : एक क्रान्ति जो भारत की स्वाधीनता और एकता सम्पन्न करे; एशिया का पुनरुत्थान तथा स्वातन्त्र्य और उसका उस महान् भूमिका को फिर से प्राप्त करना जो उसने मानव सभ्यता की उन्नति में निभायी थी; मानवजाति के लिए एक नये, अधिक महान्, अधिक उज्ज्वल और अधिक उदात्त जीवन का उदय जो अपनी सम्पूर्ण चरितार्थता के लिए बाहरी तौर पर राष्ट्रों की पृथक् सत्ता के अन्तर्राष्ट्रीय एकीकरण पर आधारित होगा, उनके राष्ट्रीय जीवन को सुरक्षित और सुदृढ़ करेगा पर उन्हें एक दूसरे के पास लाकर सब पर अभिभूत करने वाली एकता का रूप दे देगा; भारत के द्वारा अपने आध्यात्मिक ज्ञान का और जीवन को आध्यात्मिक बनाने के साधनों का सारी मानवजाति को दान; और अन्त में, क्रमविकास में एक नया कदम उठायेगा जो चेतना को उच्चतर स्तर पर उठा कर जीवन की उन अनेक समस्याओं का हल करना प्रारम्भ कर देगा जिन्होंने मनुष्यजाति को तभी से हैरान और परेशान कर रखा है जब से मनुष्यों ने वैयक्तिक पूर्णता और पूर्ण समाज के विषय में सोचना और स्वप्न देखना शुरू किया था।

भारत स्वाधीन हो गया है पर अभी तक एक नहीं हुआ है

भारत स्वाधीन हो गया है पर उसने एकता प्राप्त नहीं की, पायी है केवल टूटी-फूटी स्वतन्त्रता। एक समय प्रायः ऐसा दीखता था मानों वह शायद फिर से पृथक्-पृथक् राज्यों की उस अव्यवस्थापूर्ण स्थिति में जा गिरेगा जो ब्रिटिश विजय से पहले विद्यमान थी। भाग्यवश अब ऐसी प्रबल सम्भावना उत्पन्न हो गई है कि इस प्रकार का संकटपूर्ण पुनःपतन टल जायेगा।

संविधान-सभा की बुद्धिमत्तापूर्ण उग्र नीति ने इस बात को सम्भव बना दिया है कि दलित वर्गों की समस्या बिना फूट-फटाव के हल हो जायेगी।

परन्तु हिन्दुओं और मुसलमानों का पुराना साम्प्रदायिक भेद देश के स्थायी राजनीतिक विभाजन के रूप में सुदृढ़ हो गया दीखता है। यह आशा करनी चाहिये कि काँग्रेस और राष्ट्र तय किये गये इस विभाजन को सदा के लिए निर्णीत नहीं मान लेंगे, वे इसे एक कामचलाऊ अस्थायी उपाय से अधिक कुछ न समझेंगे। क्योंकि यदि यह बना रहा तो भारत भयानक रूप में दुर्बल और अपंग तक हो सकता है; गृह-कलह का होना सदा ही सम्भव बना रह सकता है, नये आक्रमण और विदेशी राज्य का हो जाना तक सम्भव हो सकता है। देश के विभाजन को मिटना ही होगा—हम आशा करें कि तनाव के ढीले पड़ने से, शान्ति और मेल-मिलाप की आवश्यकता को उत्तरोत्तर अधिक समझते जाने से, साझे और संयुक्त कार्य की और यहां तक कि इस प्रयोजन के लिए ऐक्य के किसी साधन की भी सतत आवश्यकता अनुभव करने से यह विभाजन दूर हो जायेगा। इस प्रकार एकता चाहे किसी भी रूप में आ सकती है—उसके ठीक-ठीक रूप का व्यावहारिक महत्त्व भले ही हो, कोई आधारभूत महत्त्व नहीं है। परन्तु चाहे किसी भी उपाय से हो, विभाजन को मिटना ही होगा और वह मिट कर रहेगा। क्योंकि ऐसा हुए बिना भारत का भविष्य भयानक रूप से कुण्ठित, यहां तक कि विफल भी हो सकता है। परन्तु ऐसा बिलकुल नहीं होगा।

भारत की एशिया में भूमिका और मानवजाति का एकीकरण

एशिया जग गया है और उसके बड़े-बड़े भाग स्वतन्त्र हो गये हैं या इस समय बन्धन-मुक्त हो रहे हैं; इसके अन्य भाग जो अभी परतन्त्र हैं, कैसे भी संघर्षों में से क्यों न हों, स्वतन्त्रता की ओर बढ़ रहे हैं। केवल थोड़ा ही करना बाकी है और वह आज न सही कल पूरा हो जायेगा। उसमें भारत को अपनी भूमिका निभानी है और उसे उसने ऐसी सामर्थ्य और योग्यता के साथ करना शुरू कर दिया है जो अभी से उसकी सम्भावनाओं की मात्रा को तथा उस स्थान को सूचित करती है जिसे वह राष्ट्रों की सभा में ग्रहण कर सकता है।

मानवजाति का एकीकरण प्रगति के पथ पर है, चाहे है अभी अधूरे प्रारम्भ के रूप में ही, वह संगठित तो किया जा चुका है पर वह बड़ी भारी कठिनाइयों के विरुद्ध संघर्ष कर रहा है। लेकिन उसमें बल और वेग है और,

यदि इतिहास के अनुभव को मार्गदर्शक माना जा सके तो, वह अनिवार्य रूप से बढ़ता चला जायेगा और अन्त में विजयी होगा। इस कार्य में भी भारतवर्ष ने प्रमुख भाग लेना प्रारम्भ कर दिया है और, यदि वह उस विशालतर राजनीतिज्ञता को विकसित कर सके जो वर्तमान घटनाओं और तात्कालिक सम्भावनाओं से ही सीमित नहीं होती, बल्कि भविष्य में पैठ कर उसे देख लेती और निकट ले आती है, तो इस क्षेत्र में भारत की उपस्थिति यह दिखा सकती है कि मन्द एवं भीरुतापूर्ण विकास और द्रुत एवं साहसपूर्ण विकास में कितना अधिक भेद है। जो कार्य किया जा रहा है उसमें महान् विपत्ति आ सकती है और वह उसमें बाधा डाल सकती या उसे नष्ट कर सकती है, किन्तु फिर भी अन्तिम परिणाम निश्चित है। क्योंकि, चाहे जो हो, एकीकरण प्रकृति के विकासक्रम में एक आवश्यक क्रिया है, अनिवार्य गति है और उसकी उपलब्धि की सुरक्षित रूप से भविष्यवाणी की जा सकती है। राष्ट्रों के लिए भी इसकी आवश्यकता स्पष्ट है, क्योंकि इसके बिना छोटे-छोटे राष्ट्रों की स्वाधीनता भविष्य में कभी भी सुरक्षित नहीं रह सकती और बड़े तथा शक्तिशाली राष्ट्र भी वास्तव में सुरक्षित नहीं रह सकते। स्वयं भारत भी यदि विभक्त रहा तो अपनी सुरक्षा के बारे में निश्चित रूप से आश्वस्त नहीं रहेगा। अतएव एकीकरण सिद्ध होना सबके हित की बात है। केवल मानवीय अशक्तता एवं मूर्खतापूर्ण स्वार्थपरता ही उसे रोक सकती है। इसके विरुद्ध तो, कहा गया है कि, देवताओं का प्रयत्न भी वृथा जाता है; परन्तु यह भी प्रकृति की आवश्यकता और भगवान् की इच्छा के विरुद्ध हमेशा नहीं ठहर सकता। एकीकरण के साधित हो जाने पर राष्ट्रवाद पूर्णरूप से चरितार्थ हो जायेगा; तब अन्तर्राष्ट्रीय भावना और दृष्टि भी अवश्य विकसित होगी और अन्तर्राष्ट्रीय पद्धति तथा संस्थाएं भी। यहां तक कि यह भी सम्भव है कि इस परिवर्तन की प्रक्रिया में ऐसी प्रगतियां भी दिखायी दें जैसी कि दो या अनेक देशों का एकसंग नागरिक होना, संस्कृतियों का स्वेच्छापूर्वक घुलना-मिलना आदि, और राष्ट्रीयता की भावना अपनी युद्धप्रियता छोड़ इन चीजों को अपनी दृष्टि की अखण्डता के साथ पूर्णतया संगत अनुभव करे। एकता की एक नयी भावना मनुष्यजाति को अपने अधिकार में कर लेगी।

संसार को भारत का आध्यात्मिक दान प्रारम्भ हो चुका है। भारत की

आध्यात्मिकता यूरोप और अमरीका में नित्य बढ़ती हुई मात्रा में प्रवेश कर रही है। यह आन्दोलन बढ़ेगा; वर्तमान काल की विपदाओं के बीच अधिकाधिक लोगों की आंखें आशा के साथ भारत की ओर मुड़ रही हैं और न केवल उसकी शिक्षाओं का बल्कि उसकी आन्तरात्मिक और आध्यात्मिक साधना का भी अधिकाधिक आश्रय लिया जा रहा है।

बाकी तो अभी एक व्यक्तिगत आशा है, एक विचार और आदर्श है जिसने भारत और पश्चिम में, दोनों जगह, दूरदर्शी विचारकों को अपने वश में करना शुरू कर दिया है। इस मार्ग की कठिनाइयां प्रयास के किसी भी अन्य क्षेत्र की अपेक्षा बहुत अधिक जबर्दस्त हैं, परन्तु कठिनाइयां जीती जाने के लिए ही बनी थीं और यदि 'परम इच्छाशक्ति' का अस्तित्व है तो वे अवश्य ही पराजित होंगी। यहां भी, यदि इस विकास को घटित होना है तो, चूंकि यह आत्मा और आन्तरिक चेतना की अभिवृद्धि द्वारा ही होगा, इसका समारम्भ भारतवर्ष ही कर सकता है और यद्यपि इसका क्षेत्र विश्वव्यापी होगा फिर भी केन्द्रीय आन्दोलन भारत ही कर सकता है।

ये हैं वे भाव और भावनाएं जिन्हें मैं भारतीय स्वाधीनता की इस तिथि के साथ सम्बद्ध करता हूं। क्या यह घटनाक्रम पूरा होगा या कहां तक या कितनी शीघ्र पूरा होगा यह बात इस नये और स्वाधीन भारत पर निर्भर करती है।

CWSA खण्ड ३६, पृ. ४७४-७७ —श्रीअरविन्द

पाद-टिप्पणी : इस सन्देश को ऑल इण्डिया रेडियो, त्रिचिनापल्ली से १४ अगस्त १९४७ को, भारत की स्वतन्त्रता से पूर्व की सान्ध्य-बेला में प्रसारित किया गया था।

सृष्टि की अनन्त धारा के अन्दर प्रत्येक अवतार
भविष्य की एक अधिक पूर्ण सिद्धि की घोषणा करने वाला,
उसका अग्रदूत होता है।

—श्रीमां

कुछ संस्मरण

सन् १९२०

श्रीअरविन्द मेरे सम्मुख महान् शिव की तरह प्रतीत हुए जिनकी मैं बहुत लम्बे समय से आराधना किया करता था। वे आपादमस्तक स्वर्णिम थे, अलंकारिक रूप में नहीं बल्कि वास्तव में थे। प्राचीन हिन्दू आध्यात्मिक कृतियों में देवी-देवता तथा महान् ऋषि-मुनियों का रंग स्वर्णिम, अतिमानसिक वर्ण बतलाया गया है—*हिरण्यवर्णम्, हिरण्मयम्*। वैसे ही थे वे। उनके स्निग्ध स्वर्णिम शरीर से प्रकाश छिटक रहा था, उनके कन्धों पर लहराते केश दमक रहे थे और उन चमकती आंखों की दृष्टि हर वस्तु के हृदय में गहरे पैठ रही थी। श्रीअरविन्द अपनी ठवन में महिमामय दीख रहे थे। उनकी चाल राजसिक थी और जब वे बरामदे में चहलकदमी कर रहे थे तो ऐसा मालूम हो रहा था मानों वे शक्ति को समेट रहे हैं और अपनी भागवत इच्छा के अनुसार उसका प्रयोग कर रहे हैं। श्रीअरविन्द का स्पर्श चुम्बकीय था और उसने उनींदे कोषाणुओं को जीवन तथा क्रिया में जाग्रत् कर दिया।...

—टी. कोडेनडरम राव

१५ अगस्त १९४९

सामने के कक्ष में प्रवेश करते ही मैं आश्चर्य से भौचक्का खड़ा रह गया। मैंने देखा कि कक्ष पूरी तरह से स्वर्णिम प्रकाश से आपूरित था। कमरे का नाममात्र फ़र्नीचर, वहां की खिड़कियां और दरवाजे, सभी एक शक्तिशाली स्पन्दन विकीरित करते प्रतीत हो रहे थे। सचमुच वह कक्ष स्वर्णिम धूप से नहा रहा था। बहुत जल्द मैंने उस कान्तिमय स्रोत का पता पा लिया! सामनेवाले कक्ष में राजकीय महिमा-सम्पन्न श्रीअरविन्द विराजमान थे जो अपने भक्तों को दर्शन दे रहे थे। और लो! मैंने एकमेव और एकमात्र प्रभु—पुरुषोत्तम—स्वर्णिम पुरुष के दर्शन किये! मैं गभीर शान्ति तथा मधुमय प्रकाश की बाढ़ में आकण्ठ डूब गया। स्वर्णिम भव्यता के साकार रूप हमारे बीच प्रतिष्ठित हैं—उत्कृष्ट आयाम के गुरु, अनन्त विस्तार के भगवान्! उनके आगमन के सम्मान में स्वयं ब्रह्माण्ड देवस्थल

बन गया था, और मैंने यह अनुभव किया कि निश्चित रूप से श्रीअरविन्द के उज्ज्वल आनन से ही सहस्रों सूर्यों ने अपनी आभा उधार ली होगी। उस महान् तथा विशाल आश्चर्य को शब्दों में बांधना असम्भव है!

—वी. मधुसूदन रेड्डी

एक बार कुछ शिष्य श्रीअरविन्द के चारों ओर बैठे बातचीत कर रहे थे। बातों-बातों में श्रीअरविन्द ने उनसे पूछा कि वे क्या चाहते हैं। दारा ने भगवान् का अन्तर्दर्शन पाना चाहा। उसकी इच्छा तत्काल फलीभूत नहीं हुई, लेकिन दर्शन-दिवस पर जब दारा ऊपर दर्शन के लिए गया तो उसने श्रीअरविन्द को व्यक्ति-रूप में नहीं देखा, बल्कि तीव्र श्वेत प्रकाश के उद्गम के रूप में उसने उनके दर्शन किये। पहले पहल दारा ने सोचा कि यह उसकी आंखों का भ्रम है। फिर जब वह लौट रहा था, सीढ़ी पर उसने रासलीला देखी। तब उसकी समझ में आया कि कुछ दिन पहले की गयी उसकी इच्छा पूरी हो रही थी!

Among the Not so Great पृ. १३६

२१ फरवरी १९२८

पहली बार श्रीमां के दर्शन करने पर मुझे उनके चारों ओर एक दीप्ति का आभास हुआ। जब मैंने पहली बार श्रीअरविन्द के दर्शन किये तो मुझे सिंह-सदृशता का, साथ ही पर्वत के जितनी विशाल अचञ्चलता का भान हुआ। उन्होंने झुक कर अपने दोनों हाथों से मेरे सिर का स्पर्श कर आशीर्वाद दिये। श्रीमां सारे समय मुस्कुराती रहीं मानों श्रीअरविन्द की उपस्थिति में मुझे सहजता प्रदान कर रही हों। पंक्ति में मेरे सम्मुख एक अमरीकी दम्पति थे। उन्हें मैंने आपस में सलाह करते सुना कि किसे पहले प्रणाम किया जाये। मां-श्रीअरविन्द के पास पहुंच कर उन्होंने दोनों के बीच प्रणाम कर समस्या सुलझा दी। इस तरह उन्हें दोनों के कर-कमलों का स्पर्श एक साथ मिल गया!

... मैंने सुना था कि श्रीअरविन्द धीमी, बहुत धीमी आवाज में बोलते थे, लेकिन मैंने उन्हें कभी बातें करते नहीं सुना।

—के.डी.सेठना

यदि मैं अतिमानस के स्तर पर खड़ा होकर अतिमानस की सहायता से संसार पर कार्य करता, तो संसार बदल चुका होता अथवा जिस प्रकार अब बदल रहा है उसकी अपेक्षा अत्यधिक वेग से तथा भिन्न ढंग से बदलता। इस समय मैं उच्च तथा सुदूर अतिमानसिक स्तर में स्थित होकर वहीं से जगत् को परिवर्तित करने का प्रयत्न नहीं कर रहा, बल्कि उसकी कुछ शक्ति यहां उतार कर, उसके आधार पर तथा उसके द्वारा कार्य करने की कोशिश कर रहा हूं। परन्तु वर्तमान अवस्था में एकदम पहला कार्य है, अधिमानस को उत्तरोत्तर अतिमानसभावापन्न बनाना और दूसरा है निश्चेतना के भारी प्रतिरोध को कम करना तथा यह मानव अज्ञान को जो सहारा देता है उसके बल को क्षीण करना, क्योंकि वह सदा ही संसार को और स्वयं अपने-आपको भी बदलने के हमारे सभी प्रयत्नों में सबसे अधिक बाधा पहुंचाता है।

मैं हमेशा यह कहता आया हूं कि युद्ध आदि मानव-व्यापारों में मैं जिस आध्यात्मिक शक्ति का प्रयोग करता रहा हूं वह अतिमानसिक नहीं बल्कि अधिमानसिक है; और जब यह शक्ति जड़-जगत् में कार्य करती है तो यह संसार की निचली शक्तियों के जाल में इतनी बुरी तरह उलझ जाती है कि इसके परिणाम चाहे जितने भी प्रबल या उस समय के उद्देश्य को पूरा करने के लिए कितने भी पर्याप्त क्यों न हों, वे अपूर्ण ही होते हैं। यही कारण है कि मुझे अपने जन्मदिन १५ अगस्त को स्वाधीन भारत का उपहार तो मिल रहा है, पर दो गठरियों में दो स्वतन्त्र भारतों के दिये जाने से यह पेचीदा हो गया है। मैं ऐसी उदारता के बिना ही अच्छा था। यदि बिना तोड़े हुए एक ही स्वतन्त्र भारत मुझे दे दिया जाता तो मेरे लिए काफी होता।

CWSA खण्ड ३५, पृ. ३६७-६८ —श्रीअरविन्द

'पुरोधा' :

दैनन्दिनी

अगस्त

१. प्रेम के दिव्य स्वामी, शाश्वत गुरु, तू हमारे जीवनों को राह दिखाता है। केवल तेरे लिए और तेरे अन्दर हम रहना चाहते हैं; हमारी चेतना को प्रदीप्त कर, हमारे चरणों को मार्ग दिखा और वर दे कि हम जो कुछ कर सकते हैं उसे अधिक-से-अधिक कर सकें, अपनी समस्त ऊर्जाओं का उपयोग एकमात्र तेरी सेवा के लिए करें।

२. मेरे अन्दर जो कुछ सचेतन है वह अबाध रूप से तेरा है और मैं थोड़ा-थोड़ा करके और हमेशा ज्यादा अच्छी तरह से, अभी तक अंधेरी आधारशिला, अवचेतना को जीतने की कोशिश करूंगी।

३. प्रेम की एक विशाल तरंग सभी चीजों पर उतरती है और सभी चीजों में प्रवेश करती है।

४. हे प्रकाश, प्रेम, अकथनीय शक्ति, सभी अणु तुझे पुकार रहे हैं कि तू उनमें प्रवेश करे और उन्हें रूपान्तरित कर दे...।
सभी को सायुज्य का परम आनन्द प्रदान कर।

५. हे मधुर स्वामी, परम रूपान्तरकारी, सभी अवहेलनाओं का अन्त कर, समस्त आलस्य-भरी निष्क्रियता का अन्त कर, हमारी सभी ऊर्जाओं को एक साथ इकट्ठा कर, उन्हें एक अदम्य, अप्रतिरोध्य इच्छा बना दे।

६. वर दे कि सभी तुझे जान सकें, तेरे साथ प्रेम कर सकें, तेरी सेवा कर सकें, सभी परम उत्सर्ग पा सकें!

७. मौन भक्ति में मैं तुझे नमन करती हूं...।

८. तेरे परम प्रकाश की दीप्ति उस समस्त अन्धकार में से फूट पड़े जो समस्त पृथ्वी पर छा गया है।

९. प्रभो... अपनी दया की बलवान् भुजाओं में इस दुःखी धरती को लपेट ले, अपने अनन्त प्रेम के हितकर उद्‌गार से उसमें प्रवेश कर।

१०. हमारी तीव्र कृतज्ञता और हमारे सम्पूर्ण समर्पण की भेंट स्वीकार कर।

११. समस्त जीवन भगवान् की ओर अभिमुख, भगवान् के अर्पित भगवान् की सेवा हो, ताकि थोड़ा-थोड़ा करके भगवान् की अभिव्यक्ति बन जाये।

१२. सच्चा समर्पण तुम्हें बड़ा बनाता है, तुम्हारी क्षमता बढ़ाता है, वह तुम्हें मात्रा और गुण में अधिक बड़ा परिमाण देता है जिसे तुम अपने-आप न पा सकते।

१३. हमारी निरन्तर प्रार्थना है कि हम भगवान् की इच्छा को समझ सकें और उसके अनुसार जी सकें।

१४. तुम्हारी साधना में महत्त्वपूर्ण चीज है पग-पग पर सच्चाई। अगर वह हो तो भूलें सुधारी जा सकती हैं और उनका बहुत महत्त्व नहीं होता।

१५. अज्ञान और मूर्खता के कारण सत्ता में सच्चाई का अभाव है। लेकिन दृढ़ संकल्प और 'भागवत कृपा' में पूर्ण विश्वास द्वारा व्यक्ति इस कपट को दूर कर सकता है।

१६. अपने जीवन की परिस्थितियों के बारे में शिकायत करना हमेशा गलत है, क्योंकि वे हम अपने-आपमें जो कुछ हैं उसकी, बाहरी अभिव्यक्ति होती हैं।

१७. सन्तोष बाहरी परिस्थितियों पर नहीं, आन्तरिक स्थिति पर निर्भर होता है।

१८. जो पूर्णता के मार्ग पर आगे बढ़ना चाहता है उसे मार्ग की कठिनाइयों के बारे में कभी शिकायत न करनी चाहिये क्योंकि हर कठिनाई एक नयी प्रगति का अवसर है। शिकायत कमजोरी और सच्चाई के अभाव का चिह्न है।

१९. अपने जीवन को व्यवस्थित करो और तुम देखोगे कि प्रत्येक चीज के लिए तुम्हारे पास अवकाश है।

२०. पार्थिव जीवन प्रगति का स्थान है। यहीं, पृथ्वी पर ही प्रगति सम्भव है। पार्थिव जीवन में ही प्रगति हो सकती है। और चैत्य एक जीवन से दूसरे जीवन में स्वयं अपने विकास की व्यवस्था करके प्रगति को आगे ले जाता है।

२१. जीवन सत्य और असत्य के बीच, प्रकाश और अन्धकार के बीच, प्रगति और पतन के बीच, ऊंचाई पर चढ़ने या गहराइयों में गिरने के बीच निरन्तर चुनाव है। हर एक को मुक्त रूप से चुनाव करने की छूट है।

२२. दुःखी होने का कोई फायदा नहीं। तुम जितनी शक्ति दुःख के अनुभव

में नष्ट करते हो उसका ज्यादा अच्छा उपयोग गलत गतिविधि को रूपान्तरित करने में होगा।

२३. थके, अवसादग्रस्त, हतोत्साह या अधीर हुए बिना, प्रयास छोड़े बिना और अपने लक्ष्य या दृढ़ निश्चय को छोड़े बिना, बिना किसी कठिनाई या कष्ट के प्रयास किये जाने की शक्ति है *सहनशीलता*।

२४. माताजी की शक्ति केवल सत्ता के शिखर पर ही नहीं है। वह तुम्हारे साथ और तुम्हारे निकट है और जब कभी तुम्हारी प्रकृति काम करने दे तो वह क्रिया करने के लिए तत्पर रहती है।

२५. यह आवश्यक नहीं है कि अभीप्सा विचार के आकार में हो—वह अन्दर एक ऐसी भावना हो सकती है जो उस समय भी बनी रहती है जब मन कार्य में व्यस्त हो।

२६. अभीप्सा करते चलो तो आवश्यक प्रगति आकर रहेगी।

२७. दूसरों के दोषों के बारे में बोलना निस्सन्देह बहुत बुरा है। सबके अपने-अपने दोष होते हैं और अपने विचारों में उन पर जोर देना निश्चय ही उन्हें ठीक करने में उनकी सहायता नहीं करता।

२८. हमें उन गलतियों पर सन्ताप नहीं करना चाहिये जो हमने की हैं; केवल **अपनी अभीप्सा में पूर्ण निष्कपटता** को बनाये रखने की आवश्यकता है—तब अन्त में सब कुछ अच्छा होगा।

२९. सरल बनो, प्रसन्न रहो, अचञ्चल रहो, अपना काम अच्छी-से-अच्छी तरह करो, अपने-आपको हमेशा मेरी ओर खुला रखो—तुमसे बस इसी की मांग की जाती है।

३०. भगवान् के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने का सबसे अच्छा तरीका है बस प्रसन्न रहना।

वर दे कि हम अपनी प्रसन्नता केवल भगवान् में ही ढूंढ़ें।

३१. श्रीअरविन्द को सर्वोत्तम श्रद्धाञ्जलि हम यही दे सकते हैं कि हमारे अन्दर प्रगति के लिए प्यास हो और हम अपनी सारी सत्ता को उस भागवत प्रभाव के प्रति खोल दें, श्रीअरविन्द पृथ्वी पर जिसके सन्देशवाहक हैं।

"श्रीअरविन्द" के नाम के बारे में

३० नवम्बर १९६१

प्यारी छोटी बहन,

माताजी ने तुम्हारी लिखी वह चिट्ठी मुझे दिखलायी जिसमें तुमने "श्री" शब्द के बारे में लिखा है जो तुम्हें परेशान कर रहा है। श्रीमां चाहती हैं कि इस बारे में मैं अपना दृष्टिकोण अभिव्यक्त करूं। हां, तो मैं खरा और स्पष्टवादी होऊंगा। यह मानना एकदम से गलत है कि श्री केवल एक सम्मानसूचक उपसर्ग है जिसे हम अरविन्द नाम के आगे लगाते हैं। ऐसी बात बिलकुल नहीं है। यहां श्री का अर्थ महाशय, श्रीमान् इत्यादि बिलकुल नहीं है। यहां श्री नाम का ही हिस्सा है। श्रीअरविन्द एक और अविभाज्य शब्द है। यही वह अन्तिम रूप है जिसे स्वयं श्रीअरविन्द ने अपने नाम को दिया। और मैं तुमसे कह सकता हूं कि इस रूप में मान्त्रिक प्रभाव है।

श्री शब्द का उच्चारण अन्य कई भारतीय या यूरो-अमरीकन अक्षर से अधिक कठिन नहीं है और मेरे ख्याल से यह लाभप्रद नहीं है कि हम किसी सामान्य यूरोपियन या अमरीकन की इस दलील के बहाने निचले स्तर पर उतर आयें कि सचमुच नाम अरविन्द है और श्री सम्मानसूचक उपसर्ग है, और यह कि यही ठीक है और दूसरों को भी हमारे मत को मानना चाहिये। मुझे भय है, यह एकदम से निरर्थक भ्रम है, बल्कि हमें तो प्रयास यह करना चाहिये कि सामान्य जनता को ऊपर उठायें और सत्य के साथ उसका साक्षात्कार करायें।

श्रीमां ने तुम्हें लिखा मेरा यह प्रबोधन देख लिया और वे इससे पूरी तरह सहमत हैं।

क्षमा करना, शायद मेरी चिट्ठी का लहजा कुछ पैना हो गया। मैं हूं, तुम्हारा बहुत प्यारा बड़ा भाई—

—नलिनीकान्त गुप्त

'शृण्वन्तु', फरवरी ८१ से साभार

कुछ मनके जिन्दगी के

(भाग २)

(लीजिये, आ पहुंची हमारे पास कनिष्ठाजी के जन्मदिन, ५ जून २०१६ की सुन्दर भेंट—सं.)

पिछली बार, 'कुछ मनके जिन्दगी के' में मैंने आपको ५ छोटी-छोटी मगर मर्मस्पर्शी कहानियां सुनायी थीं। उम्मीद है कि आपके मर्म को भी वे छू गयी होंगी। तो अब की बार, यह रहा उस शृंखला का शेष भाग।

यह तो सच है कि पूर्ण सन्नाटे का मतलब होता है जहां तनिक भी शोर न हो, जहां कोई भी आवाज न सुनायी दे, बस चारों ओर शान्ति ही शान्ति हो। मगर जीवन में ऐसे क्षण भी आते हैं जब यह सन्नाटा वचन से भी ऊंचा और स्पष्ट बोल लेता है। इसका मैं आपको एक उदाहरण देती हूं।

फ़ील्ड मार्शल सैम बहादुर मानेकशॉ का नाम किसने नहीं सुना है? वे भारतीय सेना की बहुत ही जानी-मानी हस्तियों में से एक हैं।

एक दिन की बात है, वे अहमदाबाद में एक सामूहिक संगठन के दौरान अंग्रेज़ी में बोल रहे थे। तब वहां पर एकत्रित लोग जोर-जोर से चिल्लाने लगे, "गुजराती में बोलिये जनाब, हमें अंग्रेज़ी में भाषण सुनने का कोई शौक नहीं है! गुजरात में हम गुजराती बोलते हैं! कोई दूसरी भाषा नहीं चलेगी, नहीं चलेगी!" जनता इतना शोर मचा रही थी कि फ़ील्ड मार्शल साहब को आधे वाक्य में ही रुकना पड़ा। पल-भर के लिए वे चुप रहे, बस एक कठोर निगाह से पूरी जनता को छान मारा, फिर बोले, "प्रिय बन्धुओ, बहनो और भाइयो, इस महान् देश की सेवा में अपनी प्रिय मातृभूमि के लिए मैंने अनेक लड़ाइयां लड़ी हैं, और अनेक जीतें भी हासिल करी हैं। और उस सेवा के दौरान मैंने 'सिख रेजिमेंट' के बहादुर सिपाहियों से पंजाबी सीखी है, 'मराठा रेजिमेंट' के बहादुर सिपाहियों से मराठी सीखी है, 'मद्रास सैप्पर्स' के बहादुर सिपाहियों से तमिल सीखी है, 'बेंगॉल सैप्पर्स' से बंगाली सीखी है, 'बिहार रेजिमेंट' से हिन्दी सीखी है, यहां तक कि 'गुरखा रेजिमेंट' से मुझे नेपाली भी सीखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, लेकिन बड़े अफसोस की बात यह है कि इतने सालों की मातृसेवा में मुझे भारतीय सेना में गुजरात से एक भी नौजवान नहीं मिला जिससे

मुझे गुजराती सीखने का सौभाग्य प्राप्त होता!"

यह सुन पूरे मैदान में सूईटपक सन्नाटा छा गया, एक चूं तक नहीं सुनायी दी। मगर उस दिन वह सन्नाटा शब्दों से भी ऊंचा और स्पष्ट बोल गया!

तो यह थी जानी-मानी हस्ती फ़ील्ड मार्शल मानेकशॉ की कहानी। हमारी अगली कहानी भी भारतीय सेना से ही ताल्लुक रखती है, लेकिन उसका किरदार कोई फौजी नहीं, बल्कि एक सीधे-सादे इन्सान हैं जिन्होंने देश के लिए कोई जंग तो नहीं लड़ी, लेकिन जो एक बहादुर सिपाही से भी बढ़ कर हैं। उनका नाम है श्री लक्ष्मण सिंह राठौर। और यह कहानी सुनिये भारत सेना के विंग कमाण्डर वेंकी अय्यर के शब्दों में :

सुबह आठ बजे के करीब मैं श्री लक्ष्मण सिंह राठौर का इन्तजार कर रहा था। कुछ ही देर बाद, दूर क्षितिज पर वह हेलीकॉप्टर नजर आया जिसमें वे सवार थे। श्री लक्ष्मण सिंह सेना में तो नहीं थे, वे आ रहे थे अपने बेटे फ़्लाइंग ऑफिसर विक्रम सिंह के अन्तिम संस्कार के लिए। कल ही मैंने उनको एक सन्देश भेजा था, "श्रीमान्, मुझे यह कहते हुए अत्यन्त दुःख हो रहा है कि आपके सुपुत्र फ़्लाइंग ऑफिसर विक्रम सिंह का एक दुर्घटना में, ड्यूटी के दौरान देहान्त हो गया।"

यह पहली बार था कि मुझे इस तरह की जिम्मेदारी सौंपी गयी थी। भारतीय सेना के सिपाही की मौत के बारे में परिवारवालों को सूचित करना, फिर अन्तिम क्रिया-कर्म की व्यवस्था करना, और अन्त में उस शहीद सिपाही के परिवार का स्वागत करना... यह कोई आसान काम नहीं होता है, इतना तो मैं जानता था! यह स्वाभाविक है कि ज्यादातर, परिवार के सदस्य एक अन्तिम बार अपने प्रियजन का दर्शन करना चाहेंगे। लेकिन खेद की बात यह है कि ज्यादातर उन्हें दिखाने के लिए हमारे पास क्षत-विक्षत शव ही होता है। उदाहरण के लिए, जो सेना के हवाई जहाज की दुर्घटना के शिकार होते हैं, उनके हमें दूर-दूर तक बिखरे, लम्बी छान-बीन के बाद मुश्किल से कुछ अंग ही मिलते हैं। अन्तिम संस्कार के लिए, नियम के मुताबिक, लाश का वजन लेना पड़ता है। और दुःख की बात यह है कि मानव शरीर का कम और मिट्टी तथा ताबूत का वजन ज्यादा होता है।

आंखों की नमी की वजह से हेलीकॉप्टर कुछ धुंधला-सा नजर आ रहा था। विक्रम सिंह न केवल मेरा सहकर्मी था बल्कि मेरा करीबी दोस्त

भी रह चुका था। अगर मेरा ही यह हाल था, तो उसके पिता का क्या हाल होगा, वह भी अस्सी साल की दीर्घ आयु में! वे तो पूरी तरह से टूट चुके होंगे। हे भगवान्, यह कैसी क्रूर लीला है आपकी! यह तो कुदरती नियम है कि पिता को बेटा मुखाग्नि देता है। मगर यहां तो ठीक उलटा ही हो रहा था! बूढ़े बाप अपने जवान बेटे को मुखाग्नि देने आ रहे थे! मैंने अपनी भावनाओं और विचारों को काबू में किया, और जैसे ही हेलीकॉप्टर जमीन पर आ रुका, मैं सीना तान कर बूढ़े पिता के लिए मजबूत ढाल बन कर खड़ा हो गया। अन्दर से तो टूट रहा था, मगर सेना के कठोर अनुशासन ने मुझे सिखाया था कि हर एक स्थिति में तन और मन को दृढ़ करना पड़ता है। जब हेलीकॉप्टर का दरवाजा खुला और सीढ़ी को उतारा गया, तो मैं कुछ भौचक्का रह गया! वहां से निकले एक वयस्क दुबले-पतले सज्जन, जो गम्भीरता और शान्ति की मूरत नजर आ रहे थे। कोई रोना-धोना नहीं! बल्कि मुझे वहां तैनात देख कर, हलके से मुस्कुराते हुए उन्होंने कहा, "तो तुम हो वेंकी अय्यर! विक्रम तुम्हारी खूब तारीफ किया करता था। तुम्हें अपना सबसे अच्छा दोस्त मानता था!"

मेरे गले से एक चूं तक नहीं निकली। बोलना तो बहुत कुछ चाह रहा था, मगर बस बुत बन कर खड़ा रह गया। श्री लक्ष्मणजी तो मुझसे ज्यादा काबू में लग रहे थे! मुझे लगा था कि हेलीकॉप्टर से एक टूटा हुआ, रोता-बिलखता, गम का मारा, वयस्क इन्सान निकलेगा। मगर उनकी शक्ति, शान्ति और स्थिरता को देख कर मेरे तो मानों होश ही उड़ गये थे! भारतीय सेना में न होते हुए भी उनमें एक श्रेष्ठ व बहादुर सिपाही के सारे लक्षण नजर आ रहे थे! श्री लक्ष्मण सिंह राठौर सीढ़ी से नीचे उतरे, मुझसे हाथ मिलाया, फिर मेरे कन्धों पर हाथ रख कर कहा, "मैंने एक बेटा खोया है और तुमने एक सच्चा दोस्त। मुझे पूरा विश्वास है कि तुमने सारी व्यवस्था बिलकुल ठीक ही की होगी। तुम जैसा-जैसा कहोगे, मैं वैसा-वैसा करने को तैयार हूं। और अगर आप सबकी अनुमति हो तो मैं किसी गेस्ट-हाउस में नहीं, बल्कि अपने बेटे के कमरे में रात गुजारना चाहूंगा।"

घण्टे भर बाद अन्तिम संस्कार पूरा हो गया। उसके दौरान श्री लक्ष्मणजी एक सैनिक की तरह तैनात खड़े रहे। अन्दर-ही-अन्दर वे टूट रहे होंगे, मगर उनकी आंखों से एक आंसू तक नहीं टपका।

अगले दिन वे फिर हेलीकॉप्टर में सवार होकर चले गये। एक बार भी मुड़ कर नहीं देखा, बस, एक सिपाही की तरह सीना तान कर आगे की ओर ही बढ़ते गये। जब हेलीकॉप्टर धीरे-धीरे नीले आसमान में ऊपर, और ऊपर चढ़ता गया फिर एक बिन्दु बन कर रह गया, तब तक मैं और मेरे सीनियर अफसर उसे एकटक देखते रहे। फिर मैंने कहा, "सर, ये सज्जन सचमुच काबिले तारीफ हैं। बिलकुल एक सैनिक की तरह आये और एक सैनिक की तरह सीना तान कर एक भी आंसू बहाये बिना चले गये। मैंने इतने मजबूत और इतने शान्त आदमी को जिन्दगी में कभी नहीं देखा!"

तब मेरे सीनियर अफसर बोले, "हां, श्री लक्ष्मणजी सचमुच एक बहादुर सिपाही से कम नहीं हैं। उनके तीन बेटे थे और तीनों-के-तीनों भारतीय सेना की सेवा में शहीद हो गये। उन्होंने तीन-तीन बेटों को जना, उनकी परवरिश की, उन्हें अच्छे संस्कार दिये, देशभक्ति के पाठ पढ़ाये, उन्हें भारतीय सेना में दाखिल होने के लिए अनुमति और प्रेरणा दी, फिर, तीनों-के-तीनों बेटों का, दिल पर पत्थर रख कर अन्तिम संस्कार भी किया।

"उनके पहले सुपुत्र गुरखा राइफ़ल्स के कप्तान श्री घनश्याम सिंह राठौर लदाख में १९६२ की लड़ाई में मारे गये।

"उनके द्वितीय सुपुत्र मेजर बीर सिंह १९६५ में Ichogil Canal की वारदात में मारे गये।

"और उनके सबसे छोटे सुपुत्र ने इन दो हादसों के बावजूद भारतीय सेना में दाखिल होने का साहस किया। और अब वह भी चल बसा। वह हमारी वायु सेना में पायलट था।"

सचमुच, श्री लक्ष्मण सिंह राठौर एक बहादुर भारतीय नागरिक हैं। उन्होंने जो बलिदान अपने देश के लिए किया, उसकी कोई तुलना नहीं! वे खुद एक "शहीद" हैं। जिन्दा रहते हुए भी तीन-तीन बार भारतमाता के लिए उन्होंने मौत को गले लगाया। मगर खेद की बात तो यह है कि हमारा महान् देश 'इस शहीदों के शहीद' को जानता तक नहीं। हमारे देश में अमीर क्रिकेट के खिलाड़ियों को, और अमीर फ़िल्मी सितारों को वाहवाही मिलती है, उन्हें 'पद्मश्री' और 'पद्मविभूषण' जैसे प्रतिष्ठित पुरस्कारों से नवाज़ा जाता है! लेकिन श्री लक्ष्मण सिंह राठौर की, तीन-तीन बेटे खो देने वाले पिता की, कौन सोचता है? उन्होंने तो अपना सब कुछ खो दिया

था। वे एक ऐसे इन्सान थे जिन्होंने एक बेटे को खोने के बाद, दूसरे, यहां तक कि तीसरे बेटे को भी भारतीय सेना में दाखिल होने से नहीं रोका! बच्चे तो मां-बाप का भविष्य होते हैं। प्रकृति का यही सामान्य नियम है कि मां-बाप अपनी औलाद से पहले भगवान् को प्यारे हो जाते हैं, मगर भगवान् की लीला को या कुदरत की क्रूरता को हम समझ नहीं पाते हैं, जब जवान औलाद पहले गुजर जाती है, और बूढ़े मां-बाप को बेसहारा छोड़ जाती है। घर का ही चिराग बुझ जाये तो फिर उसके बाद कोई भी रोशनी उस घर को रोशन नहीं कर सकती। जिन नन्हें बच्चों को गोद में बिठा कर, बांहों में भर कर, लोरियां सुनायीं हों, जिनकी उंगली पकड़ कर उन्हें चलना सिखाया हो, जिन बच्चों की परवरिश और प्रगति के लिए दिन-रात एक किये हों, वे ही बच्चे मौत का शिकार हो जायें, तो यह कैसा न्याय है, बूढ़े मां-बाप पर क्या बीतती होगी, यह मेरी समझ से परे है!

श्रीमां ने कहा है कि जब हम पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ता है तो उसके साथ-साथ भगवान् हमें उन मुसीबतों का डट कर सामना करने की शक्ति भी देते हैं। और श्री लक्ष्मण सिंहजी इसका जीता-जागता उदाहरण हैं!

तो यह थी "कुछ मनके जिन्दगी के" की आखिरी कड़ी। ये कहानियां छोटी और साधारण-सी होते हुए भी हम पर गहरा प्रभाव छोड़ जाती हैं। और सालों साल हमारे मन और हृदय के किसी कोने में घर कर लेती हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं!

—कनिष्ठा

जीवन को भगवान् के प्रति अर्पित पुष्प की भांति खिलना चाहिये।

—श्रीमां

Space on this page is offered by:

DEORAH SEVA NIDHI
Charitable Trust Dedicated to Service
(Founder trustee: Late Shri S. L. Deorah)
25, Ballygunge Park, Kolkata - 700 019

मेरी बिटिया रानी...

जिन्दगी की आपा-धापी में हम कितना कुछ भुला बैठते हैं! बहुधा जीवन के सार को ही ताक पर चढ़ा, उससे आंखें मींच लेते हैं। वैसे यह युग-युगान्तर की समस्या है—कल थी, आज है, कल भी रहेगी, क्योंकि हर युग के तथाकथित आधुनिकतावाद में युवावर्ग अपने गुरूर में बड़े-बूढ़ों का सुरूर बिसरा बैठता है। आप शायद कहें कि भई, पहेली क्यों बुझा रही हो, आखिर, तुम कहना क्या चाहती हो?

कहना बस इतना ही चाहती हूं कि कल एक मां की छोटी-सी चिट्ठी मेरे हाथ लगी। आंखों पर पड़ा परदा उठा देने वाली उस चिट्ठी ने मेरे दिल के पोर-पोर को छू दिया, उसमें दर्द की कसक जगा दी और आंखों में शुक्रिया अदाई का नीर छलका दिया।

आज के आधुनिक जीवन में जहां युवा पीढ़ी अग जग में ऊंची से ऊंची छलांगें लगाने का दावा करती है, अपने घर की चौखट के अन्दर के जीवन को भी बहुधा नहीं संभाल पाती, घर-घर के, देश-विदेश के वृद्ध-वृद्धाओं की, देखने में संक्षिप्त लेकिन अपने अन्दर महासागर समेटे, आपबीती है यह।

तो यह है एक मां की अपनी युवा बेटी के नाम लिखी नन्हीं-सी पाती—

मेरी प्यारी बिटिया रानी,

जिस दिन तुम देखो कि न केवल मेरे बालों पर सफेदी छा गयी है, मेरे चेहरे पर झुर्रियों का जाल बिछ रहा है, बल्कि मेरी सभी इन्द्रियां भी मुझे धोखा देने पर उतारू हो रही हैं उस दिन तुम समझ जाना कि तुम्हारी मां बूढ़ी हो गयी है और तब तुम बहुत धीरज धरना बिटिया और खास तौर पर पग-पग पर यह समझने की कोशिश करना कि मां तुम्हारी किस अवस्था से गुजर रही है।

तब अगर बातचीत के दौरान मैं एक ही बात बार-बार दोहराऊं तब तुम अखर कर बीच में यह मत कह बैठना, "मां, एक मिनट पहले तो आपने यही बात कही"... कृपया, मेरी बात फिर भी सुनना और याद कर लेना अपने बचपन के वे सुनहले दिन जब रात पर रात तुम परियों की बस एक ही कहानी सुनने की जिद करतीं और मैं खुशी-खुशी हर रात, तुम्हें वही कहानी सुना कर सुलाती, मैं कभी नहीं थकी बच्ची, कभी

मैंने तुमसे यह कहने की बात सोची तक नहीं कि कब तक सुनती रहोगी वही घिसा-पिटा किस्सा!

कभी जब घर पर तुम्हारे दोस्तों के आने से पहले मैं नहा-धोकर तैयार होने में आनाकानी करती दीखूं तो बिगड़ना मत लाडो, क्योंकि बूढ़ी देह हमेशा अपने कहे में नहीं रहती ठीक वैसे ही जैसे शैतानियों से भरा बचपन कभी दूसरे के कहे से नहीं चलता। बस, बीस साल पहले की चिक उठा कर, उझक कर देख लेना अपने शरारत-भरे उन दिनों को जब मैं तुम्हारे पीछे-पीछे कपड़े लेकर सारे घर में भागी-भागी फिरती थी कि तुम नहा-धो लो तो घर के दूसरे काम भी आगे बढ़ें, लेकिन तुम मेरे साथ लुका-छिपी का ऐसा खेल खेलतीं कि मैं थक भले जाती, लेकिन तुम्हारे ऊपर खीजती कभी नहीं, क्योंकि मैं मां हूं; अपनी सन्तान के साथ धमा-चौकड़ी मचाने में कौन मां बाजी हारना चाहेगी भला? यह जान लेना बेटी, कि शरीर से कुछ अशक्त तुम्हारी मां तुम्हारे साथ बचपन का खेल नहीं खेल रही, बुढ़ापे की बेढंगी चाल से लाचार है बस!

मेरी बिटिया रानी, कभी-कभी हम सबको अपना दृष्टिकोण बदलना होता है, मेरे और तुम्हारे जमाने के बदलाव को नजर में रखते हुए कदम-कदम पर तुम पाओगी कि मैं कितनी मूढ़ हूं, आधुनिक जमाने की तकनीक से कितनी पिछड़ी हुई हूं, तो मुझे उसे समझने के लिए थोड़ा वक्त देना; तिरछी नजरों से, चढ़ी हुई भौहों से मत घूरना कि "आपको इतना भी नहीं आता!"... याद कर लेना मेरी गुड़िया, कि बचपन में मैंने धीरज के साथ तुम्हें कितना कुछ सिखाया था। दूध की बोतल पकड़ने से लेकर जूतों में फीते बांधने, कलम पकड़ने से लेकर कविताएं याद कराने, सूई में तागा डालने से लेकर खुद अपने कपड़े सीने, दोस्तों से कहा-सुनी होने के बाद आंसू पोंछने से लेकर जिन्दगी के अहम फैसले लेने में तुम्हें कितनी-कितनी बार कलेजे से चिपकाया था।

जिस दिन तुम देखो मेरी नन्हीं, कि मां तुम्हारी बुढ़ापे की देहलीज पार कर चुकी हैं, मैं बस यही कहूंगी कि उस दिन से तुम अपनी भूमिका बदलने की कोशिश में लग जाना, बड़े धीरज से लैस होकर तुम्हें अपने इस नये किरदार का 'पार्ट' बड़े कौशल से अदा करना होगा, क्योंकि जब मैं अपने बुढ़ापे के नये बचपन में पहुंच जाऊंगी तब तुम्हें एक समझदार

मां की न्याईं रात-दिन मुझ पर नजर रखनी होगी न...

इसीलिए कहती हूं प्यारी बेटी कि अगर कभी अपनों या मेहमानों के बीच मेरे दिमाग से बातचीत का सिरा छूट जाये तो मुझे उसे याद करने का वक्त देना और अगर मैं उसे जल्दी न पकड़ पाऊं तो हड़बड़ा कर अपने सब्र का धागा मत टूटने देना, क्योंकि उसके टूटने पर मैं किसी भी हालत में अपने सिरे को न पकड़ पाऊंगी। और तब मैं अगर कभी अपनों या मेहमानों के बीच मौन धारण कर लूं फिर भी तुम गौर करना कि मेरे चेहरे पर बेचैनी का पुट तक नहीं है बल्कि एक सुकून लहरा रहा है, तुम्हारी उतावली से बेखबर मेरे होंठ धीमे-धीमे मुस्कुरा रहे हैं। उसकी वजह बस यही होगी कि मैं मौन रहूं या मुखर, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि दुनिया का सबसे बड़ा खजाना मेरी बिटिया रानी मेरे साथ ही है...!

फिर भी मैं कहूंगी बेटा कि जब-जब मेरे बूढ़े, लाचार पैर पहले की तरह मुस्तैदी से चलने में मेरा साथ न दें तब-तब अपना हाथ मेरी तरफ उसी तरह बढ़ा देना जिस तरह बचपन में ठुमक-ठुमक कर चलते हुए जब कभी तुम अपना सन्तुलन खो बैठने को होती थीं तो मेरे हाथ तुम्हें संभालने के लिए हमेशा तैनात रहते थे।

और आखीर में बस इतना ही कहना चाहूंगी कि जब मेरा बुढ़ापा मुझे चारों ओर से घेर ले तब तुम दुःखी या उदास मत होना... क्योंकि जीवन के दस्तूर को बदलना तो भगवान् के हाथ में भी नहीं है। तुम मेरी बस इतनी मदद जरूर करना कि मैं अपनी जिन्दगी के अन्तिम पड़ाव तक तुम्हारी मां की हैसियत से चलती चलूं...

माफ करना बेटी, यह सब इस वजह से कह रही हूं कि हर युग में समाज की नयी पौध कभी छायादार रह चुके पुराने वृक्षों को अपने रास्ते का रोड़ा मान बैठती है। उसे यह समझाने की बहुत जरूरत है कि आज की जर्जर पीढ़ी जवान पीढ़ी का ही भावी शीशा है...

यह मेरी चिट्ठी सचमुच तुम्हारे नहीं, दुनिया के उन सभी जवान बेटे-बेटियों के नाम है जो गाहे बगाहे अपनों की अपनियत को बिसरा बैठते हैं।

खत को लिफाफे में डालने से पहले मैं एक बड़ी मुस्कान के साथ, ढोल पीट कर दुनिया को यह बतलाना चाहूंगी कि मेरी बेटी दुनिया की सबसे सयानी बेटी है और तुम्हारे कान में फुसफुसाना चाहूंगी—"मैं तुमसे

जी-जान से प्यार करती हूं मेरी बिटिया रानी...!"

बेटी का जवाब था—

मेरी प्यारी मम्मा रानी,

गागर में सागर, सीप में मोती, फूल में खुशबू—फेहरिस्त आप बनाती चलिये, मैं आपके पीछे-पीछे दोहराती रहूंगी (जैसा कि बचपन में किया करती थी)—वाली मां की ममता से नहायी हुई पाती के जवाब में आपकी लाडो आपकी वही तीन साल की गुड़िया बन बैठी है जिसका आकाश उसकी मां का आंचल था, जिसकी धरती उसकी मां की गोद थी; थी नहीं, आज भी है और हमेशा-हमेशा रहेगी।

मां, चिट्ठी का जवाब देने के लिए कलम और दवात की जरूरत होती है, लेकिन मम्मा रानी और बिटिया रानी के बीच चिट्ठी-पत्री करने के लिए तो शायद भगवान् को भी कलम और दवात खोजनी होंगी... है न मेरी मम्मा रानी...!"

—वन्दना

प्रतिबिम्बित रहेगा

जो कुछ चारों ओर बिखरा पड़ा है
निर्मल जल के समान है
जिसमें उसकी प्रतिच्छाया
झलक रही है।
ईश्वर एक उज्ज्वल नक्षत्र
के समान ही इस जल में चमक रहा है
नदी निरन्तर बह रही है, कभी धीमी, कभी तेज
गति से
परन्तु नक्षत्र तो सदा ही
निर्मल जल में प्रतिबिम्बित रहेगा।

पुस्तक 'रूमी' से उद्धृत —स्व. श्री विश्वनाथ

उनकी कृपा का स्पर्श कठिनाई को सुयोग में, विफलता को सफलता में और दुर्बलता को अविचल बल में परिणत कर देता है। भगवती माँ की कृपा परमेश्वर की अनुमति है, आज हो या कल, उसका फल निश्चित है, पूर्वनिर्दिष्ट अवश्यंभावी और अनिवार्य है ।

— श्रीअरविन्द

अमरनाथ शिक्षण संस्थान, मथुरा (उ.प्र.)

फोन– 0565–3240006, 9358340375

Website : anvaschool.org, Email-amarnath.mtr1@rediffmail.com

Date of Publication: 1st August 2016
Rs. 15.00 (Monthly) Registered: SSP/PY/47/2015-2017
RNI No.18135/70 WPP No.TN/PMG/(CCR)/WPP-472/15-17

A school by The Vatika Group vatika

Holistic

"MatriKiran believes in holistic development and Yoga, Clay Modelling, Indian Music and Ballet are part of its curriculum. The need for extra classes does not arise at all."

Upasana Mahtani Luthra
Mother of Nanak, Grade 4 and Nritu Luthra, Grade 6

Nature Friendly

"Being a doctor myself, it was very important for me that the school environment should be healthy. Class rooms in MatriKiran are nature friendly, spacious, well ventilated and they open out to green spaces... in communion with nature."

Dr Nidhi Gogia
Mother of Soham Sharma, Grade 1

ADMISSIONS OPEN
Academic Year 2016-17

MatriKiran

Junior School SOHNA ROAD
Pre Nursery to Grade 5

Senior School VATIKA INDIA NEXT
Grade 6 to Grade 8

www.matrikiran.in | +91-124-4938200, +91-9650690222
Junior School: W Block, Sec. 49, Sohna Rd, Gurgaon • **Senior School**: Sec. 83, Vatika India Next, Gurgaon